1940 Bitter and Sweet Words

Diary entries (1940 to 1970)

विषयानुक्रमणिका

नं.-विषयनाम	पृष्ठ सं.	नं.-विषयनाम	पृष्ठसंख्या
१ मंगलाचरण	१	२ सद्धर्मकी दुर्लभता	२
३ सच्ची पूजा	३	४ उत्तम क्षमा	४
५ उत्तम मार्दव	८	६ उत्तम आर्जव	१२
७ उत्तम सत्य	१६	८ उत्तम शौच	१८
९ उत्तम संयम	२२	१० उत्तम तप	२६
११ उत्तम त्याग	३०	१२ उत्तम आकिंचन	३४
१३ उत्तम ब्रह्मचर्य	३८	१४ उपदेशी वाक्य	४४
१५ सच्ची स्तुति	४५	१६ प्रभातिक	४६
१७ सबको छोड़ पड़ा रहजायेगा	५०	१८ सुना बत्तीसी	५३
१९ धर्मवीर नसरल	५६	२० धर्मवीर बालक	६०
२१, देश प्रेम की कविता	६७	२२ जुआरी प्रशंसा	६९
२३ विद्या प्रशंसा	७१	२४ प्रहेलिका	७२
२५ अपह्नुतय:	७८	२६ पंडित प्रशंसा	७९
२७ पंडित निन्दा	८१	२८ नैयायिक प्रशंसा	८२
२९ नैयायिक निन्दा	८२	[illegible] वैद्य प्रशंसा व वैद्य निन्दा	८३
३१ पौराणिक निन्दा	८४	[illegible] दुर्जन निन्दा	८७
३२ पुरोहित निन्दा	"	[illegible] स्वभाव:	८९
३३ कायस्थ निन्दा	"	३[illegible] धन प्रशंसा	९१
३४ सज्जन प्रशंसा	८५	३[illegible] [illegible]	९[illegible]

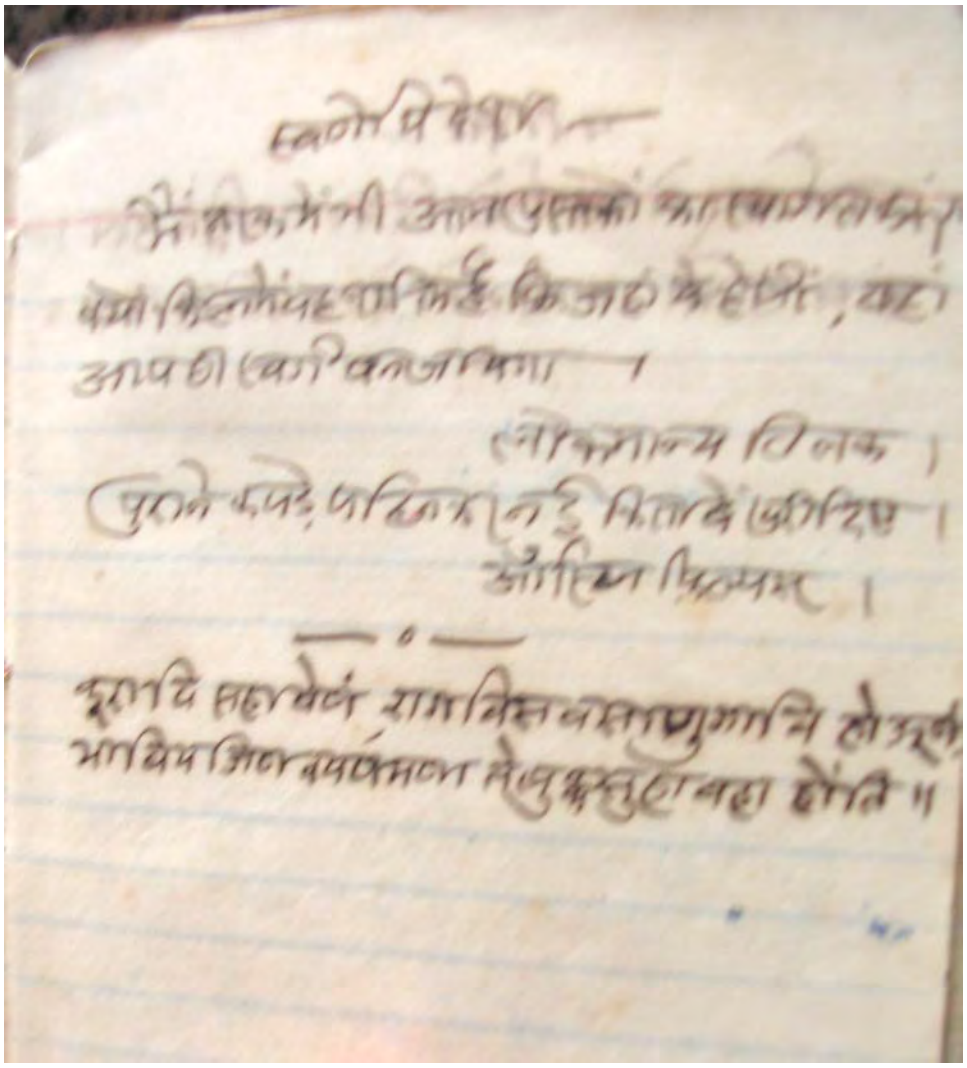

स्वर्णोपदेश —

मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूँगा। क्योंकि इनमें वह शक्ति है कि जहाँ ये होंगी, वहाँ आप ही स्वर्ग बन जायगा।

लोकमान्य तिलक।

पुराने कपड़े पहिनो और नई किताबें खरीदो।

ऑस्टिन फिल्प्स।

— ० —

[illegible]

परीक्षा —

स्वर्णकार ने स्वर्ण को, दिया अग्नि में डाल ।
कांप उठ्यो, पानी भयो, देख परीक्षा काल ॥

—०—

उत्तम [illegible]

ज्ञान एक अरु द्वेष की हानि करे बुद्धिवन्त ।
[illegible] सर्प शिव पाइए, पर उत्तम विवेकवन्त ॥

—०—

३

दुख में सुमरन सब करे, सुख में करै न कोय ।
जो सुख में सुमरन करे तो दुख काहे को होय ।

४

प्रभुता को सब कोई चहै, प्रभु को चहै न कोय ।
जो कदाच प्रभु को चहै, प्रभुता आप हि होय ॥

५

मौत मुकद्दमा मांदगी मंदा और मकान ।
पांचों कामों में सदा पत राखे भगवान ॥

संकल्प -

१

~~१ अपने जीवन में गीता के समान सर्वोपयोगी जैन गीता या इसी प्रकार के नाम की कोई पुस्तक की रचना अवश्य करूंगा।~~ प्रारम्भ है- १५।१२।३१

२

श्री पंचाध्यायी के अविशिष्टांश के पूरा करने की भी भावना हृदय में पूर्ण-रूपेण जाग्रत है। १५।१२।३१

३

प्राकृत के अध्ययन करते समय हृदय में यह विचार उठा था- कि अपने जीवन में सिद्धान्त ग्रन्थों- धवल- महाधवल (?) का हिन्दी में अनुवाद करूंगा। हृदय में यह भाव सदैव जाग्रत रहे।

(बीकर) १५।१२।३१

दोनों ओर जीवन का उत्कर्ष भी बनाने की उत्कट भावना है

१५-१२-३८

१

अपारे संसारे कथमपि समासाद्य नृभवं,
न धर्मं यः कुर्याद्विषयसुखतृष्णातरलितः।
बुडन् पारावारे प्रवरमपहाय प्रवहणं,
स मुख्यो मूर्खाणामुपलमुपलब्धुं प्रयतते ॥

२

निकसि निगोद चिर निकस खेद सह धरि ति
पवन वोद जल आगि निगोद लहि जन्म मरन सहुं [illegible]
लट गिंडोल उटकण मकोड तन भमर भ्रमण को
जल बिलोतज पशु तन हुओ [illegible] सर ठरपर
[illegible] दीरि नरक पात अति कष्ट सो हि
कष्ट कोट न जाय कहत ।
तहं पाय [illegible] किरादेजे
ते दुर्लभ अवसर लहे ॥

३

रयणुव्व जलहि पडिअं
मणुयत्तं तं पि होइ अइ दुलहं ।
एवं सुणिच्छइत्ता मिच्छकसायेय
वज्जेह ॥
मणुअगइए वितओ मणुअगइए महव्वयं सयलं
मणुअगइए झाणं मणुअगइए वि णिव्वाणं ॥

१ मंगलाचरणः—

१

अर्हंतो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिस्थिताः,
आचार्याः जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
ये सिद्धान्तसुपाठकाः मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु मे मंगलम्॥

२

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं बुधाः संश्रितो–
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय नित्यं नमः।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य घोरं तपः,
वीरे श्रीधृतिकीर्तिकान्तिनिचयो वीरप्रभुः पातु नः॥

३

यो विश्वं वेद्यवेद्यं जननजलनिधेर्भंगिनः पारदृश्वा,
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलङ्कं यदीयं।
तं वंदे साधुवंद्यं निखिलगुणनिकेतं ध्वस्तदोषद्विषन्तं,
बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा।

४

श्रेयोमार्गानभिज्ञानिह भवगहने जाज्वलद्दुःखदाव–
स्कन्धे चङ्क्रम्यमाणानतिचकितमिमानुद्धरेयं वराकान्।
इत्यारोहत्परानुग्रहरसविलसद्भावनोपात्तपुण्य–
प्रक्रान्तैरेव वाक्यैः शिवपथमुचितान् शास्ति योऽर्हन् स–
नोऽव्यात्॥

२ सद्धर्म की दुर्लभता —

१

जगत्यनन्तैकहृषीकसंकुले त्रसत्वसंज्ञित्वमनुष्यतायिता-
सुगोत्रसद्गात्रविभूतिवार्तता सुधीसुधर्माश्च यथाग्रदुर्लभाः ।

२

तद्द्रव्यमव्यग्रमुदेतु शुभैः स देशः संतन्यतां प्रतपतु प्रततं स कालः,
भावः स नन्दतु सदा यदनुग्रहेण प्रस्तौति तत्वरुचिमाप्तगवी नरस्य ।

३

प्राच्येनाथ तदातनेन गुरुवाग्बोधेन कालारुण-
स्याम क्षाम तमश्छिदे दिनकृते वोदेष्यता विष्कृतम् ।
तत्वं हेयमुपेयवत्प्रतियता संवित्तिकान्ताश्रिताः,
सम्यक्त्वप्रभुणा प्रणीतमहिमा धन्यो जगज्जेष्यति ॥

४

मानुष्ये सति दुर्लभा पुरुषता पुंस्त्वे पुनर्विप्रता -
विप्रत्वे बहुविद्यतानययुता विद्यावतोऽर्थज्ञता ।
अर्थज्ञस्य विचित्रवाक्यपटुता तत्रापि लोकज्ञता -
लोकज्ञस्य समस्तशास्त्रविदुषो धर्मे मतिर्दुर्लभा ॥

३ सच्चीपूजा

स्नानं भावजलै विलेपनमथो तद्बोधसच्चन्दनैः,
पुष्पैः शुद्धमनोमयैश्च सततं ध्यानेन धूपं तथा।
दीपं ज्ञानमयं शमाज्यनिभृतं कृत्वा जिनस्यार्चनां,
ये कुर्वन्ति निरंजनस्य नितरां धन्याःमतास्ते जनाः ॥

जबतक तेरे पुण्यका नहिं आता है छोर।
अवगुण तेरें माफ हैं, करले लाख करोर ॥

४ उत्तम क्षमा

१ खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वेजीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केण वि॥

२ ददतु ददतु गालो गालिमन्तो भवन्तो,
वयमपि तदभावाद् गालिदानेऽसमर्थाः।
भवति यदिह पार्श्वे तद्धि तस्मै ददाति,
नहि शशक विषाणं कोऽपि कस्मै ददाति॥

३- उदयगदा कम्मंसा जिणवरवसहेहिं णियदिणा भणिया।
तेसु हि मुहिदो रत्तो, दुट्ठो वा बंधमणुहवदि॥
(कुन्दकुन्दाचार्य

४- सव्वत्थ वि पियवयणं दुव्वयणे दुज्जणे वि खमकरणं।
सव्वेसिं गुणगहणं मंदकसायाण दिट्ठंता॥
स्वामिकार्तिकेय

५- आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।
क्रोधः परितापकरः, सर्वस्योद्वेगकारकः।
क्रोधो वैरानुसंजनकः क्रोधश्च सुगति हन्ता॥१॥
क्रोधो मूलमनर्थानां क्रोधः संसारवर्धनः।
धर्मक्षयकरः क्रोधस्तस्मात्क्रोधं विवर्जयेत्॥२॥

१- एक मुसलमान का अपने पुत्र (इकलौते) के मारने वाले के ऊपर क्षमा धारण करना, साथ ही अपनी अंटनी देकर उसे भगा देना। अपने कर्मोदय का चिन्तवन कर अपने आप को धीरज बंधाना।

२- मेघरथ राजा का शरण में आए हुए कबूतर की रक्षा करना, एवं उसके एवज में अपने शरीर का उस प्रमाण मांस देना।

३- एक राजा ने शत्रु को जीतने के लिए मंत्री को भेजा, उसने शत्रु के देश में जाकर "क्षमा भाव से अपने घर बैठेंगे- वे सब छोड़ दिए जायेंगे- विपरीत चलने वाले दण्ड पायेंगे" इस प्रकार की घोषणा करदी। घोषणा सुनते मात्र ही सब मित्र बन गए। राजा ने प्रसन्न होकर भेंट प्रदान की

क्षमा की कहानी

१- नमक के पहाड़ पर की चींटी मिश्री के पहाड़ वाली चींटी से भेंट होने, कुशल क्षेम का कारण पूछने पर मिश्री का स्वाद बतलाना उसको भी मिश्री के पहाड़ पर जाना - परन्तु सारे पहाड़ पर घूम आने पर भी मिश्री का स्वाद न मिलना - तब उसने उसके मुंह के नमक का टुकड़ा बताया - और उसे दूर कराया - बाद में उसे मिश्री की चाट पड़ना - ठीक यही हालत हमारी और क्रोध का है, क्षमा मिश्री का पर्वत है, नमक क्रोध का पर्वत है, दोनों चीजें काम और भीतरी चित्तवृत्तियाँ हैं - अन्य नहीं।

२ उत्तम मार्दव

१-चक्रं विहाय निज दक्षिण बाहु संस्थं यत्प्राव्रजन्ननु तदैव स तेन मुंचेत्।
क्लेशं किलाप स हि बाहुबली चिराय मानो मनागपि हतिं महतीं करोति।

२-अंगं न चंगं न गुणो गुणानां न निर्मल: कोपि कला विलास:।
स्फुरत्प्रभा न प्रभुता च कापि, तथाप्यहंकार कदर्थितोऽहं।

३- या दुनियां में आय के, छांड़ि देय तू ऐंठ।
लेना है सो लेय ले, उठी जात है पैठ॥

४- कीया गुरूर तूने जब रंग रूप बू का,
मारे हवा ने झोंके, शबनम ने मुंह पे थूका॥ ओस

महार की [illegible]

यदंतु नद्या: परिपालको, त्वं वै भवाब्धे: [illegible] परिपालकोऽसि।
न [illegible] एक कर्म।
[illegible] भवतो [illegible]।

[illegible]

त्वत्तो न [illegible]
[illegible] तथा वै भवतो न [illegible]।
[illegible] मया च
[illegible]।

विनय बिना विद्या नहीं, विद्या बिन [illegible],
ज्ञान बिना [illegible] नहिं [illegible]॥

एक बार कोई बेलदार पाँच गदहों पर कुछ अजीब सा माल
किसी भले आदमी ने
लादकर बाजार में बेचने जा रहा था। रास्ते में लोगों ने उससे पूछा भाई, इन पर क्या लिए जा रहा है? उसने उत्तर दिया- श्रीमान इनमें से एक पर अत्याचार, दूसरे पर अभिमान, तीसरे पर ईर्ष्या, चौथे पर दुष्चिन्ता-बेईमानी और पाँचवें पर कुटिलता-छल भर कर ले जा रहा हूँ। लोगों ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा—क्या इन चीजों के खरीददार भी हो सकते हैं? गदहेवाले ने उत्तर दिया—क्यों नहीं श्रीमान, पहले गधे के माल को (अत्याचार और दुष्टता) को बादशाह, दूसरे के माल (अभिमान) को रईस, तीसरे के माल को (ईर्ष्या को) विद्वान, चौथे के माल को (बेईमानी को) व्यापारी और पाँचवें के माल को (कुटिलता को) स्त्रियां खरीदने के लिए सदा लालायित रहते हैं।

१०

एक महात्मा योगी छह-छह महीनेकी समाधि
भूमिके भीतर लगाया करते थे। केवल एक दिन के लिए
बाहर निकलकर लोगोंको दर्शन देते. आहार-
विहार और नीहार से निपटते और पुनः भूमि में
समाधि लगा लेते। एक दिन राजाने मंत्रीसे पूछा—
यह साधु छः-छः मास तक बिना कुछ लिये पीये कैसे
जीवित रह जाता है? मंत्रीने उत्तर दिया—महाराज,
छह महीनेके बाद भी दर्शनोंको हजारों लोग एकत्रित
हुए मिलेंगे, यह लोकेषणा और प्रतिष्ठाका मोह
ही इसे जीवित रखता है और कुछ नहीं? राजाने
कहा—यह कैसे माना जाय? मंत्रीने कहा— महाराज,
अबकीबार ऐसा कीजिए कि जिस दिन यह बाहर
निकलनेवाला हो, उसके स्थानसे एक-एक मील
दूर तक फौजका घेरा डालकर लोगोंको समाधिस्थल
तक पहुँचनेसे रोक दीजिए। फिर देखिये—क्या तमाशा
होता है? राजाने ऐसा ही प्रबन्ध करा दिया। जब
साधु समाधिसे निकला और चारों ओर देखनेपर भी
कोई आदमी उसे नजर नहीं आया, तो वह नहीं
सह सका, गिर पड़ा और मर गया। राजाकी समझ
में आ गया कि मंत्रीका कहना ठीक है। भोजनको
जीत लेना आसान है, पर मान-प्रतिष्ठा के मोहसे
बचना बहुत कठिन है।

साहित्य

१) भारतीय जातियां - अन्तर्जा० आदि

२) आठों पद का स्वरूप

३) नवीन दीक्षित एक जादूगर का दृष्टान्त, जिसने अपने विरोधी के आगे यही [illegible] था।

४) विद्यासागर के [illegible] विद्या पाने का [illegible] का दृष्टान्त, जिसके देखने से [illegible] पर [illegible] के [illegible] उसकी विद्या ही नष्ट हो गई।

५) स्मरण मो [illegible] ....

६) मस्तक की पूजा कब और किसकी, तथा पैरों की पूजा कब किसकी होती है?

७) अहंकारियों का पतन में [illegible] होता है

८) कठिन ध्वनियों वीणा नहीं [illegible] किन्तु कोमल ध्वनियों ही [illegible] है

९) छोपु अछोपु [illegible] पंचउ।
जहिं जहिं जोवउं तहं अप्पाणउ॥

१०) बड़े बड़ाई ना करें, बड़े न बोलें बोल।
हीरा मुख से ना कहै लाख हमारा मोल॥

११. ~~[illegible] पंचायत~~

सरयू पार करने का राम केवट [illegible]
नाई न नाई लेत धोबी लेत न धोबी [illegible]
ऐसे उतराई [illegible] [illegible]
(रामच० [illegible])

६ उत्तम आर्जव

(१) माया कषाय की चार जाति मां —
अनन्तानु बंधी आदि . यां उनके दृष्टान्त .

(२) मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।
मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम् ॥

(३) पश्य लक्ष्मण पम्पायां
बकः परम धार्मिकः ।
शनैः शनैः पदं धत्ते
जीवानां वध शंकया ॥

मत्स्य का उत्तर —
किं पुनः वर्ण्यते राम
येनाहं निष्कुली कृतः ।
सहवासिनो हि जानन्ति
चारित्रं सहवासिनाम् ॥

(४) माया तैर्यग्योनस्य ।
जो जैसी माया चारी करता है. वह उसी
प्रकार की तिर्यञ्चों में जन्म लेता है।
देखो — बगुला, कोयल, हंस-वगैरह,
गाय-बैल, मकड़ी, बिच्छू
जोंक आदि के दृष्टान्त।

अन्यायोपार्जितं वित्तं दशवर्षाणि तिष्ठति
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति ॥

७ उत्तम सत्य

१ असत्य के भेद

२. [illegible] आदि [illegible]
[illegible] आदि के [illegible] प्रकार [illegible]

३. सत्य का प्रभाव - दीवान अमरचंद जी [illegible]
[illegible]

४. [illegible] की गवाही.

५. [illegible] एक [illegible]
[illegible].

६. एक बार भी झूठ बोलने से सत्य के
अवतार युधिष्ठिर कहलाने [illegible]
क्योंकि 'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो वा।'

७. एक झूठ बोलने और [illegible]
[illegible] - [illegible]
[illegible]

८. [illegible] के सत्य [illegible]
[illegible]
[illegible]

९. झूठ बोलने वालों [illegible]
[illegible]
[illegible]

१०. वचन की सिद्धि - सत्यवादियों को ही होती है

११. सत्य की रक्षा के लिए प्राण भले जायें, इससे
वचन सिद्धि होती है और असत्य वादन से
[illegible] भी बचा जा सकता है

१२. राजा जहु का हठ था.

१३. कबीर ने एक बार झूठ बोलने वालों को उपदेश दिया.
साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप
जाके हिरदे साँच है, ताके हिरदे आप ॥

१४. थोड़ा चुराने वाले के हाथ कुछ थोड़ा ही हाथ लगता है।

८ उत्तमशौच

१- जहिं भावहिं तहिं जाहि जिय, जं भावइ करि तं जि।
केम्वइ मोक्खु ण अत्थि पर, चित्तहं सुद्धि ण जं जि]

२- वंदउ णिंदउ पडिकमउ, भाउ असुद्धउ जासु।
पर तसु संजमु अत्थि णवि, जं मणसुद्धि ण तासु।

योगीन्द्रदेव।

३- देउ ण देवलि णवि सिलए, णवि लिप्पइ णवि चित्ति
अखउ णिरंजणु णाणमउ, सिउ संठिउ समचित्ति.

परमात्मप्रकाश

४- अंगं गलितं पलितं मुंडं दशन विहीनं जातं तुंडम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दंडं तदपि न मुंचत्याशापिंडम्॥

५- भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं
शय्या च भूः परिजनो निजदेहमात्रम्।
वस्त्रं सुजीर्णशतखंडमयी च कंथा
हा हा तथापि विषयान्न जहाति चेतः॥

६- मक्खी बैठी शहद पै, रही पंख लिपटाय।
हाथ मलै अरु सिर धुनै, लालच बुरी बलाय॥

७- अयमेव परो धर्मः, इदमेव परं तपः।
इदमेव परं शर्म, यद्वा यान्नाधिको व्ययः॥

८- गजधन, हयधन, राज धन और रतन के निधान)
जब आवत संतोष धन, सब धन धूलि समान॥

९

९- आशाया: ये दासास्ते दासा: सर्वलोकस्य ।
आशा येषां दासी, तेषां दासायते लोक: ॥

एक बुंदेलखंडी उक्ति —

१०- लुचई चपरियां घाल भरखांय,
टंगबे कूं दिमान जू जांय ॥

११- आशागर्त: प्रतिप्राणि यस्मिन् विश्वमणूपमम् ।

१२- नि:स्वो निष्कशतं शती दशशतं लक्षं सहस्राधिपो
लक्षेश: क्षितिपालतां क्षितिपतिश्चक्रेशतां वांछति
चक्रेश: पुनरिन्द्रतां सुरपतिर्ब्राह्मं पदं वांछति,
ब्रह्मा शम्भुपदं हरो हरिपदं चाशावधिं को गत: ॥

— • —

सत्यं शौचं तप: शौचं शौचमिन्द्रियनिग्रह: ।
सर्वभूतदयाशौचं जलं शौचं च पंचमम् ॥ १ ॥
परापवादे यो मूक: परदारावलोकने ऽप्यन्ध: ।
पंगु: परधनहरणे जयति स लोके महापुरुष: ॥ २ ॥
(मार्कण्डेय पुराण)

'लोभ पाप का बाप बखाना।' काची वस्तु की पौटी ... लीकम।

भगत जनपाल सिंह जैन
ज्योतिष मार्तण्ड
चढ्ढा कुटी नं. १
राजा बाजार
लखनऊ - ३
टेलीफोन 25402.

प्रश्न

नारी पूछे सूम की, काहे बदन मलीन।
क्या तुम्हरो कछु गिर गयो, या काहू को दीन॥

उत्तर

सूम कहे नारी सुनो, गिरो न कछु नहिं दीन।
देवत देखो और को, तासों बदन मलीन॥

चेतन का शरीर ते भिन्न-
जो ते सिंगार विलेपन भूषण ते
निशि वासर ते हि संभारयो।
पुष्ट करी बहु भोजन पान दे
चर्म अरु अस्थि ज्यौं ही निखारे।
तैसे मिथ्यात्व अज्ञान करे बहु
ते ही मारणजीव तिहारे,
अब लों गिन्यो न आपस्यों गिन्यो
अब तो छोड़ देग दू काम हमारे।

उत्तम मध्यम. जघन्यो प्रेम..

उत्तमा स्वगुणैः ख्याता: पितृख्यातास्तु मध्यमा:।
अधमा: मातुलख्याता: श्वसुरैस्त्वधमाधमा:॥

कोयल का उत्तर

हे मृगनैनी कहो क्या चेतन,
अंग जोड़ि कै मनै मनं वारे।
संग गई न चलूं अब हू जोरि,
हे तो रिच भाव अताहि हमारे।
इहि नेह चमेन्द्रनि के नहिं
संग गई तुम कौन विचारे,
कोटि उपाय करौ तुम चेतन,
तो हूं चलूं नहिं संग तुम्हारे॥

'अनवेक्षितसद्वृत्तिः कः प्रेक्षः लेके
स्वपतीत्।

जैसे पवन झकोर तें जल में उठे तरंग।
त्यों मन चंचल भई, परिग्रह के परसंग।
ज्यों अंकुश मानै नहीं, महा मत्तगजराज,
त्यों मन तृष्णा में फिरै गिनै न काज अकाज।
[illegible]
[illegible]

९ उत्तम संयम

१- सीलंवदं गुणो वा णाणं णिस्संगदा सुहच्चाओ ।
जीवे हिंसंतस्स हु सव्वे वि णिरत्थया होंति ।

शिवार्य

२- सव्वे सि माणसाणं हिदयं गब्भो हु सव्व सत्थाणं ।
सव्वेसिं वदगुणाणं पिंडो सारो अहिंसा हु ।

शिवार्य

१

गृहस्थोंमें यत्नाचार पूर्वक कार्य करना ही आवश्यकका संयम है। इस विषयमें उन सेठानीका दृष्टान्त देना चाहिए जो कि घरपर नौकर रहते हुए भी सारे काम-काज अपने हाथसे करती थी और पतिके पूछे जाने पर उसका रहस्य प्रगट किया था।

२

रात्रिभोजन के त्याग का उपदेश और वनमाला-लक्ष्मण की शपथ का उल्लेख करना चाहिए
स त्वं यद्यपि ~~यदि~~ न पुनः सुनिवेश्य एवं
त्वयि बध्वादि कृतघ्नैस्तदिति मितोऽपि ।
सौमित्रिरन्यशपथान्, वनमालयैकं
दोषाशिदोषशपथं किल कारितोऽस्मिन् ॥

२

जूते, बिस्तरबन्द, कमरपट्टा आदि कितीभी चीजमें चमड़ेके उपयोग का त्याग आवश्यक है।

४

रेशम, मलमल, कोशा आदि जीवोंसे बनने-वाले कपड़ोंका त्याग भी आवश्यक है। हाथ की कती बुनी 'खादी' ही पवित्र वस्त्र है।

५

बाजारू मिठाई, होटल आदिकी चीजोंके खाने का त्याग.

६

हाथके पिसे आटे, कुंएके छने पानी और घरके दूध-दही के खाने-पीनेसे ही संयम की रक्षा आवश्यक करना है।

७

चमड़े से बनी चीजोंका, जहरीली, मादक और निषिद्ध वस्तुओंका व्यापार नहीं करना चाहिए।

८

सेठ की रोहिणी, रक्षिता, भोगावती और उज्झिता बहूकी ५ धान्यके दानोंवाली कहानी कहना चाहिए। जिन्हें कि एक ने फेंका, दूसरी ने खाया, तीसरीने सुरक्षित रखे और चौथीने ५ कोटी धान बनाकर वापिस दिये थे।

तीन व्यापारियों का दृष्टान्त -
जो बराबर की पूंजी लेकर परदेश कमाने को गये थे, जिनमें से एक तो कमा कर लौटा, दूसरा मूल पूंजी के साथ लौटा और तीसरा मूल पूंजी को खोकर लौटा। हमें भी विचार करना चाहिए कि हम इनमें से किस प्रकार के व्यापारी की गिनती में हैं।

१० उत्तम तप

१-उववासं कुव्वंतो आरंभं जो करेदि मोहादो।
सो णिय देहं सोसदि ण झाडए कम्मलेसं वि।

१

इसमें बारह प्रकारके तपकी व्याख्या करके बाह्य तपोंमें अनशनादिके साथ विविक्त शय्यासन तपका भी महत्त्व बताना चाहिए। तथा अन्तरंग तपोंकी महत्ता बताकर प्रायश्चित्त, वैयावृत्त्य और स्वाध्याय तप पर जोर देना चाहिए।

२

कषायविषयाहारो त्यागो यत्र विधीयते।
उपवासः स विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः॥

३

उपवास करने वाले बन्दर का दृष्टान्त देना चाहिए जिसने कि दिनमें तोड़े हुए कटहलके फलको तोड़ा था और अन्तमें रातमें खा लिया था।

४

'इच्छानिरोधस्तपः' की व्याख्या कर इच्छाको मितव्ययी बनने पर जोर देना चाहिए।

दे

सेठके चार लड़कोंका दृष्टान्त देना चाहिए जिनमें कि बड़ा कमाऊ, दूसरा जुआरी, तीसरा अन्धा और चौथा भक्त था। बड़ेके प्यारे होने की बात करने पर पिता का सबको लेकर चला जाना. बताकर की चोरीकी घटना को बताकर कमानेके अहंकारको नष्ट किया गया है।

तुलसी जग में आय के कर लीजे दो काम
देनेको टुकड़ा भलो. लेनेको हरिनाम।

[illegible] -

१. [illegible]
[illegible]

२. [illegible]

३. [illegible]
[illegible]

११ उत्तम त्याग

वितर वारिद वारि दवातुरे
चिरपिपासितचातकपोतके ।
प्रचलिते मरुति क्षणमन्यथा
क्व भवान् क्व पयः क्व च चातकः ॥

२

दवदहनजटालज्वालमालाहतानां,
परिगलितलतानां म्लायतां भूरुहाणाम् ।
अयि जलधर, शैलश्रेणिशृंगेषु तोयं
वितरसि बहु कोऽयं श्रीमदस्तावकीनः ॥

३

भुक्ता मृणालपटली भवता निपीता-
न्यम्बूनि यत्र नलिनानि निषेवितानि ।
रे राजहंस वद तस्य सरोवरस्य,
कृत्येन केन भवितासि कृतोपकारः ॥

४

आपेदिरेऽम्बरपथं परितः पतंगाः
भृंगा रसालमुकुलानि समाश्रयन्ते ।
संकोचमंचति सरस्त्वयि दीनदीनो,
मीनो नु हन्त कतमां गतिमभ्युपैतु ॥

५

अर्थाः न सन्ति न च मुञ्चति मां दुराशा
त्यागान्न संकुचति दुर्ललितं मनो मे ।
याञ्चा च लाघवकरी स्ववधे च पापं,
प्राणाः स्वयं व्रजत किं प्रविलम्बितेन ॥

६ प्रश्न

सीखी कहाँ नवाब जू, ऐसी देनी देन ।
ज्यों ज्यों ऊँचे कर किये त्यों त्यों नीचे नैन ॥

उत्तर —

देनहार कोई और है जो पठवत दिन रैन ।
लोग भरम मो पै करें, यातें नीचे नैन ॥

७

राजा भोज के और खजांची के मध्य के ~~[illegible]~~ प्रश्नोत्तर —

आपदर्थे धनं रक्षेच्छ्रीमतां कुत आपदः ।
यदि दैवाच्च प्राप्नुयात् संचितोऽपि विनश्यति ॥

पृ. १०१ पर लिखा श्लोक —
[illegible]

एक सूक्ति

शायर वोह सपूतकी भूलेसे छू जाय ।
आप निभावे जन्मभर बेटोंसे कह जाय ॥

उत्तम. मध्यम. जघन्य

उत्तमाः स्वगुणैः ख्याताः पितृख्यातास्तु मध्यमाः ।
अधमा मातुलख्याताः श्वसुरैः स्वैश्च नाधमाः ।

लखमी बंजारा बोला -

दान दिया नहिं भोगिया, लाखा कहत सांच ।
या नरतन में आतमा कोई दिन दस कोई पांच ॥१॥

स्त्री बोली -

सांई लेखा भूलिया, या में पांच न होय ।
ऊगत जित देखिये, अथवत होय न होय ॥२॥

पुत्री बोली -

लाख लेखा भूलिया, अत मां भूली होय ।
पल भर की भी खबर नहिं, का जानै का होय ॥३॥

पुत्रवधू बोली -

आगे के भूल भली, नन ही भूली होय ।
सांस विरानी पाहुनी, आवत होय न होय ॥४॥

कुलीन बोला -

नव द्वार का पींजरा, तामें पंछी पौन ।
रहवे को आश्चर्य है, गये अचंभो कौन ॥५॥

१२ उत्तम आकिंचन

१– बाहिरसंगच्चाओ गिरिसरिदरिकंदराइ आवासो।
समलोणाणज्झयणो णिरत्थओ भावरहियाणं।

(कुन्दकुन्दाचार्य-

२

राजाभोज की लक्ष्मी हर्ति चोर का —
चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः
सद्बान्धवाः प्रणयगर्भगिरश्च भृत्याः।
गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गाः
सम्मीलने नयनयोः नहि किञ्चिदस्ति ॥

३

पुरा रेवापारे गिरिरतिदुरारोह शिखरो
अनुष्णानिः पश्चात्प्रबलनिकरो धावति पुनः।
सरः सच्छेऽसच्छे दव दहन दाह ध्यति करके
क यामः किं कुर्मः हरिणशिशुरेवं विलपति ॥

४

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार

५

दिनयामिन्यौ सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः॥

६

दिन गया सन्ध्या हुई, सन्ध्या गई तो रात है,
रात भी जाती ही तो सामने ही प्रात है।
ऐन्द्रजालिक खेल मे इनमें न तुम भूले रहो,
काल धोखा दे रहा है व्यर्थ मत फूले रहो॥

१२ उत्तम ब्रह्मचर्य

१- जसु हरिणच्छी हियवडइ तसु णवि बंभु वियारि ।
एक्कहिं केम समंति वढ बे खण्डा पडियारि ॥
योगीन्द्रदेव ।

२ मत्तेभकुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः
केचित्प्रचण्डमृगराजवधेऽपि दक्षाः ।
किन्तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य
कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः ॥

३ यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः ।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक्तां च मदनं च इमां च मां च ॥

— १ —

(१) उक्त श्लोक पर राजा भर्तृहरि का दृष्टान्त
ब्राह्मण ने अमृतफल राजा को दिया. उसने
अपनी रानी को, रानी ने अपने यार कोटवाल को
और उसने अपनी प्यारी वेश्या को दिया. वेश्या ने
उसने फिर राजा को लौटा दिया. इस घटना ने
राजा की आंखें खोल दीं. और वह संसार से
विरक्त हो कर साधु बन गया ।

२

एक ब्रह्मचारी का दृष्टान्त

(२) एक अनाथ बालक पूर्व काल के गुरुकुल में भरती कर लिया गया - जब वह पूर्ण अभ्यास कर चुका - तब यात्रार्थ गुरु से आज्ञा लेकर चला - कुछ दूर चलने पर एक बरात मिली - उसने बरात के विषय में लोगों से पूछ ताछ की, विवाह का उद्देश्य पूछा - विषयभोग ही उद्देश्य है, ऐसा ज्ञात होने पर आगे चल उसकी भी इच्छा होना - एक कूप के पास किनारे पर सोना - स्वप्न में ही विवाह होना - स्त्री के साथ सोना - स्त्री को जरा खिसकने को कहना - खिसकते ही कूप में गिर जाना - आवाज सुनकर लोगों का दौड़कर निकाल लेना - और अन्त में दीक्षा धारण कर लेना।

२

(३) बहुत गई, थोड़ी रही, लगी किनारे आय।
तोलि भंग मत हूजियो, कुले दाग लगि जाय ॥

उक्त दोहा तबलची ने नाचते २ थककर ऊटपटे पैर रखने-वाली वेश्या को लक्ष्य करके कहा था। मगर उसने महफिल में बैठे हुए राजा, रानी, राजकुमार और राजकुमारी सब के कान खोल दिये। सबने तबलची को इनाम दिया। राजा ने सबसे इनाम देने का भेद पूछा। सबने सत्य सत्य कहा। राजा ने अपनी कुत्सित वृत्ति दूर की और उनको राज्य दिया। लड़की की शादी की और स्वयं जंगल में चिन्तक हो गया।

४

सीताकी अग्निपरीक्षा के समय उक्ति–

मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नमार्गे
यदि मम पतिभावो राघवादन्यपुंसि।
तदिह दह शरीरं पावके मामकीनं,
सुकृत-विकृत भीते देव साक्षी त्वमेव॥

इतना कहकर ज्योंहि अग्नि कुंड में कूदी कि वह कमल सरोवर बनगया और सीताको देवोंने कमलोंपरके सिंहासन पर बैठाया।

५

केयूरं नैवजानामि, नैव जानामि कुंडलं।
नूपुरं चैव जानामि, नित्यं पदाभिवन्दनात्॥

जब सीता के हरे जानेके बाद वानर वीरोंने लक्ष्मणसे सीताकी पहिचानके लिए उनकी हुलिया पूछी, तब लक्ष्मणने उक्त श्लोक कहा।

६

देख पराई चूपड़ी मत ललचावे जीव।
रूखी सूखी खाइके ठंडा पानी पीव॥

७

सदा सुहागिन हे सखे, जिस रोटी जिस दाल।
दाम ज्योंउ [illegible], छरी अरु नार॥

१८ उपदेशी वाक्य —

१ यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो-
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्,
संदीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः।

२. जौलौं देह तेरी काहू रोगसौं न घेरी जौलौं जरा नाहिं नेरी जासौं पराधीन परिहै।
जौलौं जमनामा बैरी देय ना दमामा जौलौं मानैं कान रामा बुद्धि जाइ न बिगारि है।
तौलौं मित्र मेरे निज कारज संभार लेरे पौरुष थकेंगे फेर पीछै कहा करि है।
अहो आग लागैं जब झौंपरी जरन लागी कुआ के खुदाए तब कहा काज सरि है।

भूधरदास

१ जब लाख चौरासी के चक्कर में घूमत २ दुःख उपाई।
कोई पुण्य संयोग मिली परजाय मनुष्य तनी सब ही सुखदाई।
[illegible] मनुष्यनि की पद्धी [illegible] सेय करें [illegible]
जिन आज्ञा नहीं परमेश्वर की चर आज्ञा करे सो अकल्याण की।

अनुवाद

* कबहूँ केरका मृग मीन अबहूँ के मर्कट तन धरि कै,
एक कबहूँ के सुर नर, असुर, नाग मय आकृति करि कै।
नटवत् लाख चौरासी स्वांग धरि धरि [illegible]
हे त्रिभुवन के नाथ रीझि कै कछू न पायो।
जो हो प्रसन्न, तो देहु अब, दुर्लभ दान मांग बिहाल।
जो हो उदास, तो कहहु इमि, मत धरि [illegible] स्वांग आलि।

१५ सच्ची स्तुति — (रहीम 'खानखाना' कृत)

१- आनीता नटवन्मया तव पुरः हे नाथ या भूमिका,
८४०००००
व्योमाकाश खगाम्बराब्धिवसुभिस्त्वत्प्रीतयेऽद्यावधि
प्रीतोऽसि यदि ता निरीक्ष्य भगवन्मत्प्रार्थितं देहि मे।
नो चेद् ब्रूहि कदापि मानय पुनर्मामीदृशीं भूमिकाम्॥

२- अद्यापि दित्सा यदि वो पयोधस्त्वय्येव सक्तां दिश भक्तिबुद्धिं।
छायातरुं संश्रयतो जनस्य कथं छायया याचितया समं लाभः॥

सच्ची जिनभक्ति :-

एकापि समर्थेयं, जिनभक्तिर्दुर्गतिं निवारयितुम्।
पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः॥

मिथिलापुरी के राजा पद्मरथ की देवों से परीक्षा हेतु अनेक उपद्रव किये जाने पर भी चलायमान नहीं होना, यहाँ तक कि मंत्र कीचड़ में फेंक दिये जाने पर भी "नमः श्री वासुपूज्याय" करते हुए पूर्ण भक्ति में लीन हो जाना, तब तुरन्त ही देवों का विक्रिया समेटना, स्तुति करना, बाद में वासुपूज्य स्वामी के गणधर होकर मोक्ष को गए। यह राजा उसी उपद्रव के दिन ही जैनी हुए थे।

(यशस्तिलक उत्तरार्ध

१६ प्रकीर्णक -

१- लोकः प्रच्छति मे वार्तां, शरीरे कुशलं तव।
कुतः कुशलमस्माकं गलत्यायुर्दिने दिने॥

२- मृत्यो बिभेषि किं मूढ, भीतं मुञ्चति नो यमः।
अजातं नैव गृह्णाति, कुरु यत्नमजन्मनि।

३- तृणं चाहं वरं मन्ये नरादनुपकारिणः।
घासो भूत्वा पशून् पाति, भीरून् पाति रणांगणे।

४- माजीवन्यः परावज्ञा दुःखदग्धोऽपि जीवति।
तस्याजननिरेवास्तु जननी क्लेशकारिणः॥

५- मनुष्य हे दुर्बलदुःखदातः कियच्चिरं स्थास्यति दौर्बल्यं ते।
त्वज्जीवनात् किं फलमस्ति लोके, वरा मृतिस्ते परदुःखदानात्॥

६- ज़िंदा दिल वो हैं, कि जो कौम पै जां देते हैं।
मुर्दा दिल अपनी भलाई पै मरा करते हैं।

वपुःप्रादुर्भावादनुमितमिदं जन्मनि पुरा
पुरारे न प्रायः क्वचिदपि भवन्तं प्रणतवान्
नमन्मुक्तः सम्प्रत्यहमतनुरग्रेऽप्यनतिभाक् —
महेश, क्षन्तव्यं तदिदमपराधद्वयमपि

१८ सब ठाठ पड़ा रह जावेगा।

१ टुक हिर्सो[१]हवा को छोड़ मियां मत देश विदेश फिरे मारा,
कज्ज़ाक[२] अजल[३] का लूटे है, दिनरात बजाकर नक्कारा।
क्या बधिया बैल भैंसा शुतर[४], क्या गोने[५] पिल्ला सर भारा,
क्या गेहूं चावल मोठ मटर, क्या आग धुंआ क्या अंगारा॥
[सब ठाठ पड़ा रह जावेगा, जब लाद चलेगा बनजारा,
कज्ज़ाक अजल का लूटे है, दिनरात बजाकर नक्कारा॥
२-गर तू लक्खी बनजारा है, और खेप भी तेरी भारी है,
अय गाफिल, तुझसे भी चढ़ता-एक और बड़ा बेपारी है।
क्या शक्कर मिश्री कंद-गिरी-क्या सांभर मीठा-खारा है।
क्या दाख मुनक्का सोंठ मिरच, क्या केशर लौंग सुपारी है।
॥टे-क॥
३-यह खेप भरे जो जाता है, वह खेप मियां मत गिन अपनी.
अब कोई घड़ी-पल सा[५] अंत में, यह खेप बदन की है कफनी,
क्या थाल कटोरे चांदी के, क्या पीतल की डिबिया ढकनी,
क्या बरतन सोने रूपे के, क्या मिट्टी की हंडिया अपनी,
॥टे.क॥
४-यह धूम धड़ाका साथ लिए, क्यों फिरता है जंगल जंगल,
एक तिनका साथ न जावेगा, मौजूद हुआ जब आन अजल,
घर बार अटारी-चौपारी क्या खासा नैनसुख और मलमल,
क्या चिलमन पर्दे फर्श नये, क्या लाल पलंग और रंगमहल।
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा, जब लाद चलेगा बनजारा,
कज्ज़ाक, अजल का लूटे है, दिनरात बजाकर नक्कारा॥

१ आशा-तृष्णा। २ डाकू, लुटेरा। ३ मौत की। ४ ऊंट
५-समय।

हर मंजिल में अब साथ तेरे[5] यह जितना डेरा-डाँडा है,
ज़र[1], दाम-दिरम का भाँडा है, बंदूक सिपर[3] और खाँडा है।
जब नायक तन से निकलेगा, जो मुल्कों मुल्कों हाँडा है,
फिर हाँडा है न भाँडा है, न हलवा है, न माँडा है॥
॥टेक॥

६

कुछ काम न आवेगा तेरे यह, लाले[2] ज़मुर्रद-सीमो ज़र[3],
सब पूंजी बाट में बिखरेगी, जब आन बनेगी जान ऊपर।
नौबत नक्कारे बान[4] निशाँ दौलत[1] हशमत[5] फ़ौजें लश्कर,
क्या मसनद तकिया मुल्क मकाँ क्या चौकी कुरसी तख्त छत्तर॥
॥टेक॥

७

क्यों जी पर बोझ उठाता है इन गोनों भारी भारी के,
जब मौत लुटेरा आन पड़ा, तब दूने हैं बेपारी के।
क्या साज़ जड़ाऊ जड़-जेवर, क्या गोटे थान किनारी के,
क्या घोड़े ज़ीन सुनहरी के, क्या हाथी लाल अमारी के।
॥टेक॥

८

मग़रूर[6] न हो तलवारों पर, मत भूल भरोसे ढालों के,
सब पटा तोड़ के भागेंगे, मुँह देख अजल के भालों के।
क्या डब्बे मोती-हीरों के, क्या ढेर खज़ाने-मालों के,
क्या बुग़चे तार-मुशज्जर के, क्या तख्ते शाल-दुशालों के।
॥टेक॥

१ धन-दौलत। २ सेना-फ़ौज। ३ पन्ना। ४ चाँदी-सोना। ५ ध्वजा। ६ वैभव। ७ अभिमानी-घमंडी।

क्या सख़्त मकां बनवाता है, खम तेरे तन का है पोला,
तूं ऊंचे कोट उठाता है, वहां तेरी गोर ने मुंह खोला।
क्या रेती-खंदक रंद बड़े-क्या बुर्ज़ कंगूरा अनमोला,
गढ़ कोट रहकला तोप किला, क्या शीशा दारू और गोला।
॥टेक॥

१०

हर आन नफ़े और टोटे में, क्यों मरता-फिरता है बन बन।
अय ग़ाफ़िल, दिल में सोच ज़रा, हैं साथ लगे तेरे दुश्मन।
क्या लौंडी बांदी दाई ददा, क्या बन्दा-चेला, नेक चलन,
क्या मंदिर-मस्जिद ताल कुँए, क्या घाट सरा क्या बाग़-चमन।
॥टेक॥

११

जब चलते चलते रस्ते में, यह गौन तेरी ढल जावेगी,
एक बधिया तेरी मट्टी पर फिर घास न चरने आवेगी।
यह खेप जो तूने लादी है, सब हिस्सों में बँट जावेगी।
धी-पूत जँवाई बेटा क्या, बनजारन पास न आवेगी॥
॥टेक॥

१२

जब मुर्ग फिरा कर चाबुक को, यह बैल बदन का हाँकेगा।
कोई नाज समेटेगा तेरा, कोई गौन सिएँ और टांकेगा।
हो ढेर अकेला जंगल में, तूं ख़ाक लहद की फांकेगा,
उस जंगल में फिर आह "नज़ीर" एक तिनका आन न झांकेगा॥
॥टेक॥

१गड़। २कब्र। ३सबसे अनभिज्ञ। ४प्राणपखेरू।
५कब्र।

१८

सुवा बत्तीसी

१- आतम सुवा सुगुरु बचन, पढ़त रहै दिन रैन।
करत काज कब रीति के, यह अचरज लखि नैन॥
२- सुगुरु पढ़ायो प्रेम सों, यह पढ़त मन लाय।
घट के पट जो ना खुले, सबहिं अकारथ जाय॥
३- सुवा पढ़ायो सुगुरु बनाय, करम बनहिं जिन अइयो भाय।
भूले चूके कबहुं न जाहु, लोभ नलिन पै दगा न खाहु॥
४- दुर्जन मोह दगा के काज, बाँधै नलिनी तर धर नाज।
तुम जिन बैठहु सुवा सुजान, नाज विषय सुख लहि तिहि थान।
५- जो बैठो तो पकरि न रहियो, जो पकरो तो दृढ़ जिन गहियो,
जो दृढ़ गहो तो उलट न जइयो, जो उलटौ तो तजि भज धइयो॥
६- यह विधि सुवा पढ़ायो नित्त, सुवटा पढ़ के भयो विचित्त।
पढ़त रहै निशदिन ये बैन, सुनत लहै भवि प्राणी चैन॥
७- इक दिन सुवटै आई मनै, गुरु संगत तज भज गए बनै।
बन में लोभ नलिन अति बनी, दुर्जन मोह दगा की तनी।
८- ता तरु विषय सुपन के काज, बैठ नलिन पे चिलके शाज
बैठो लोभ नलिन पे जबै, विषय स्वाद रस लटके तबै।
लटकत तरे उलट गए पंख, तर मुंडी ऊपर भये पांव।
९- नलिनी दृढ़ पुनि पकरे रहै, मुख पढ़ै वचन दीनता कहै,
कोई न वन में छुड़ावन हार, नलनी पकर हिं करहि पुकार
१० पढ़त रहै गुरु के सब बैन, जे जे हित कर सिखए ऐन।

११-सुवटा वन में उड़ जिन जाहु, जाहु तो मूल लेता जिन खाहु।
१२-नलिनी के जिन जइयो तीर, जाहु तो तलुं न बैठहु वीर ॥
जो बैठो तो दृढ़ ना गहो, जो दृढ़ गहो तो पकरना रह्यो ॥
१३-जो पकरो तो चुगा न खइयो, जो तुम खायो तो उलटन जइयो
जो उलटो तो तज भज धइयो, इतनी सीख हृदय में लहियो।
१४ ऐसे वचन पढ़त पुन रहे, लोभ नलिन भजतो न चहे।
आयो दुर्जन दुर्जति रूप, पकड़े सुवटा सुन्दर रूप।
१५-डारे दुख के जाल मझार, सो दुख कहत न आवै पार।
भूख प्यास बहु संकट सहै, परवश पड़े महा दुख लहै।
१६-सुवटा की सुधि बुधि सब गई, यह तो बात और कछु भई।
आय परे दुख सागर मांहि, अब इततैं कित को भज जांहि ॥
१७-केतो काल गयो इह ठौर, सुवटा जिय में ठानी और।
यह दुखजाल कटै किह भांति, ऐसी मन में उपजी रांति।
१८-रात दिना प्रभु सुमिरन करे, पापजाल काटन चित धरे।
क्रम क्रम कर काट्यो अघ जाल, सुमरन फल भयो दीनदयाल
१९-अब इततैं जो भज के जाऊँ, तो नलिनी पर बैठन पाऊं।
पायो दाव भज्यो ततकाल, तज दुर्जन दुर्गति जंजाल।
२०-आए उड़त बहुर वन मांहि, बैठे नरभव द्रुम के छांहि।
तित इक साधु महा मुनिराय, धर्मदेशना देत सुनाय।
२१-यह संसार कर्म वन रूप, तामहिं चेतन सुवा अनूप।
पढ़त रहै शुक वचन विशाल, तोहु न अपनी करे संभाल।

२२- लोभ नलिन पै बैठे जाय, विषय स्वाद रस लटके आय।
पकरहिं दुर्जन दुर्गति परै, तामें दुख बहुते जिय भरे।
२३- सो दुख कहत न आवै पार, जानत जिनवर ज्ञान मझार,
सुनतें सुवटा चौंक्यो आप, यह तो मोहि पर्यो सब पाप।
२४- ये दुख तो सब मैं ही सहे, जो जिनवरनें सुखतें कहे।
सुवटा सोचै हिये मझार, ये गुरु सांचे तारनहार॥
२५- मैं शठ फिर्यो करम वन मांहि, ऐसे गुरु कहुं पाए नांहि।
अब मोहि पुण्य उदय कछु भयो, सांचे गुरु को दर्शन लयो॥
२६ गुरु की गुणस्तुति बारंबार, सुमरै सुवटा हिए मझार।
सुमरत आप पाप भजगयो, घट के पट खुल सम्यक थयो
२७- समकित होत लखी सब बात, यह मैं, पर पर द्रव्य विख्यात।
चेतन के गुण निज मांहि धरे, पुद्गल रागादिक परिहरे॥
२८- आप मगन अपने गुण मांहि, जन्म मरण भय जिय को नांहि।
सिद्ध समान निरंजन हिए, कर्म कलंक सबहिं तज दिए॥
२९- ध्यावत आप मांहि जगदीश, दुहुं पद एक विराजत ईश।
इह विध सुवटा ध्यावत ध्यान, दिन दिन प्रति प्रगटत कल्यान।
३०- अनुक्रम शिवपद जियको भयो, सुख अनन्त विलसत नित नयो।
तत्संगति सबको सुखदेय, जो कछु हिय में ज्ञान धरेय।
३१ केवलि पद आतम अनुभूत, घट घट राजत ज्ञान संजूत।
सुख अनन्त विलसै जिय सोय, जाके निज पद परगट होय
३२- सुख बत्तीसी सुनहु सुजान, निजपद प्रगटै परम निधान।
सुख अनन्त विलसहु ध्रुव नित्त, भैया की विनती धरि चित्त।

२५

धर्मवीर - नररत्न

थे अकलंक निकलंक दो वीर, बाल्य अवस्था गुण गम्भीर ।
शान्ति स्वभावी निर्मल शरीर, बुद्धिमन्त गुण आगर धीर ।।

२

एकदिवस मुनिचन्द्र नगर, मात-पिता तिन आये डगर,
कौतुक वश तब इन्हें व्रत दियो, ब्रह्मचर्य अनुपम सुख भरो ।

३

कछुक दिवस बीते इह भांत, ब्याह समय आया जब पास,
मात-पिता ने आग्रह किया, सुन के तिन यों उत्तर दिया ।।

४

दे के ब्रह्मचर्य व्रत आप, करते ब्याह - काज की बात ।
योग्य नहीं दिखती यह बात, किस्सी यही हमारी तात ।।

५

सुन के उत्तर पितु ने कहा, आठ दिवस का था व्रत दिया,
छोड़ो टेक करो तुम ब्याह, जीवन के सुख लो भरचाह ।

६

सुन यों पितु के भोले बैन, बोले दोनों कर कंज जोड़ ।
पूज्य, पिताजी भोगे योग, जन्म अनन्ते बहुत मलोग ।

७

हुआ शान्ति का नहिं कुछ योग, लगे अनेकों अब भी रोग,
दुर्लभ किस्मत मिला यह योग - नहिं तो रचकर हँसेंगे लोग ।।

८

दीजे आज्ञा, पूज्य, सहर्ष, पढ़के करें धर्म-उत्कर्ष ।
जाति, देश, अरु पितु का कर्ज, दूर करें बस येही अर्ज ॥

९

लाल, न कीजे अब मजबूर, करें धर्म के संकट दूर ।
होगा जिससे नाम तुम्हार, गुण गावेंगे लोग अपार ॥

१०

सुन निज शिशुओं के ये बैन, हुए मात-पितु प्रमुदित ऐन ।
आज्ञा दीनी शीघ्र सहर्ष, पुत्रो जाओ पढ़ो सहर्ष ॥

११

पढ़कर फैलाना तुम धर्म, जिससे होवे दूर अधर्म ।
प्राण गंवाकर रक्षा धर्म-की करनी तुम हो शिवशर्म ॥

१२

लेके आज्ञा पहुंचे धीर, बौद्ध विद्यालय गुणगंभीर ।
तब था बौद्धों का प्राबल्य, फैला हुआ धर्म साम्राज्य ॥

१३

होते थे अन्याय अनेक, धर्म नाम पर दिन दिन एक ।
जैन धर्म का लेते नाम, काटे जाते मुंड ललाम ॥

१४

अतः उन्होंने बदला वेश, दिखे न जैनीपन लवलेश ।
लेकिन भीतर जैनत्वाग्नि, होती प्रकाशित थी प्रच्छन्न ॥

१५

एक दिवस करते व्याख्यान, प्रकरण आयो जैन महान ।
समझ पड़ा न गुरु को ज्ञान, छोड़ अधूरा गए निदान ।

१६

तब अकलंक शोधियो पाठ, यह था बुधिबल का सब ठाठ
अन्य दिवस गुरु करें व्याख्यान, पाठ शुद्ध लाय कुपित महान

१७

अहो बौद्ध मंदिर के बीच, जैनी घुसा कौन है नीच ।
जांच करूं मैं शीघ्रहिं आज, शीश काट तब पूरूं आश ।

१८

कीनी परीक्षा रातों रात, पकड़े गए वे दोनों भ्रात ।
बन्द किया कारागृह घोर, प्रात कटेगा शिर दुखदाई ।

१९

तब बोले निकलंक हे भ्रात, धर्म नहीं कुछ के विपरीत ।
प्राण जायेंगे प्रातः आज, हाय, रही ना धर्म की लाज ॥

२०

जिसके लिए छोड़ा घर द्वार, धारा ब्रह्मचर्य व्रत सार ।
हाय उसी से वंचित आज, प्राण गंवाते सरा न काज ।

२१

हाय, सोचते थे दिन रात, फैलावेंगे जैन सिद्धान्त ।
पर न दैव को भाया इष्ट, हुआ इसी से आज अनिष्ट ॥

२२

दुखित देख निज अनुज तुरंत, बोले निर्भय हो अकलंक,
दुःख करो ना, होउ निशङ्क, मेंट चढ़ेंगे धर्म मयंक ॥

२३

बोला अनुज न मृत्यु-दुख लेश, है केवल इतना ही क्लेश।
कर न सके जिन धर्म प्रचार, कौन करे तुम बिन उद्धार ॥

२४

सोचो तात हो कोई उपाय, भाग चलें जिन धर्म हिताय।
देर करो ना, क्षण की एक, लांघ कोट हम चलें स्वयमेव।

२५

भागे धर्म हेतु ये वीर, प्रातः पहुंचे सरवर-तीर।
तात आप हो एक सुलक्ष्य, विद्या-प्रवर अरु विद्या वन्त ॥

२६

सो छिप जाओ कमलन-पत्र, रक्षा अपनी करो पवित्र,
यों कर चरण छुए निज तात, भाग चले न कही कोई बात ॥

२७

अनुज वियोग लखा जिस काल, आँसू झर भरि गी तत्काल,
पर उड़ती लखि धूलि अपार, कमलन बीच छुपायो काम।

२८

आगे ज्यों ही बढ़े निकलंक, धोबी भागा उनके संग।
काटा गया शीश तत्काल, पहुँचे स्वर्ग भूमि तत्काल।

२९

यों जिन शासन-रक्षा-हेत, प्राण दिए उन निकलंक देव,
पर न बौद्धमत किया स्वीकार, सहा खड्ग का तीव्र प्रहार।

३०

हुवा दूर जब यों उपसर्ग, हो निर्भय निकसे अकलंक,
जैन धर्म का किया प्रचार, कर शास्त्रार्थ अनेकों बार ॥

३१

मित्रो, शिक्षा लो तुम आज, हम भी मरेंगे कर कुछ काज।
जिससे होगा सुखी समाज, होगा चतु दिशि धर्म विकाश।

~~~ o ~~~

२० धर्म वीर-बालक —

१

आओ बालक चतुर सुजान, तुम्हें सुनावें चरित महान।
जिससे बनो वीर बलवान, तुम भी पावो सुर सम्मान।

२

है पंजाब प्रान्त विख्यात, बल वीरता-विश्व-विख्यात।
गुरु गोविन्द सिंह रण धीर, उसी देश के थे नरवीर ॥

३

थे स्वभाव के सरल उदार, मुगल वंश के शत्रु अपार।
फतह सिंह जोरावर नाम, थे इनके दो सुवन ललाम।
~~~

४

पिता तुल्य ये भी सुकुमार, दोनों शिशु थे शूर अपार ।।
केहरि-शावक सम वे बन्धु, थे निर्भीक शौर्य के सिन्धु ।।

५

दैव योग से युगल कुमार, भोले भाले गुण- आगार ।
प्रतिभा शाली परम-प्रवीन, हुए शत्रु के हाथ अधीन ।

६

मुग़लन सैन्य का था जो शूर, सेना पति वज़ीरखां क्रूर ।
देख बालकों का प्रिय रूप, बोला तुम्हें बना दूं भूप ।।

७

किन्तु तजो तुम अपना धर्म, कलमा पढ़ो, छोड़ निज कर्म
बोले, हम हैं बालक बीर, संकट में होते न अधीर ।।

८

चाह नहीं पावें सम्राज, जग के प्रिय सुन्दर सुख साज ।
दुखद मृत्यु, या मां की गोद, दोनों में मिलता है मोद ।।

९

शेष तजे चाहे भूभार, चढ़े हिमाचल सुरसरि-धार ।
सुधा स्रवै रवि, इन्दु अंगार, अमृत पान से तन हो क्षार ।।

१०

दहे पवन, पावक हो शीतल, नष्ट-भ्रष्ट होय जगतीतल
तो भी धर्म कर्म सम्मान, तजें न हम जब तक तन-प्राण ।

११

कहा क्रूर क्षत्र ने इन्हें तुरन्त, चुन दो ईंटों में हो अन्त ।
फतह सिंह निज बन्धु निहार, हुआ हृदय में व्यथित अपार ।

१२

भैया लखकर मेरी पीर, कहीं न तुम हो अधिक अधीर ।
तज दो धर्म आत्म सम्मान, इसी सोच में व्याकुल प्राण ।

१३

बन्धु, तजो मत चिन्ता शोक, हम हैं वीर विश्व आलोक ।
चुने गए ईंटों में सत्वर, केवल शीश रहे जब ऊपर ।

१४

कहा यवन ने तज दो वान, दें हम तुमको जीवन दान ।
बोले सुनकर वे सुकुमार, वीरों को यह तन है भार ।।

१५

शूर न तज सकते निज शान, धर्म हेतु होते बलिदान ।
चुने गए यों दोनों बन्धु, अस्त अरुण हों ज्यों सिंधु ।

१६

तजे प्राण पर तजा न धर्म, सहे कष्ट पर तजा न कर्म ।
हुआ हनन, यों उनका अन्त, किन्तु कीर्ति है व्याप्त दिगन्त ।

१७

मिलो तुम में भी हो शान, तो निज मन में लो यह ठान ।
हम भी बन सकते मतिमान, धर्म वीर बालक मतिमान ।।

स्वाध्याय

१- छाया से विनय की कमी, जिससे ज्ञान की कमी होगई।

२- स्वाध्याय के पांच भेद। उनका स्वरूप वर्णन।

३- वर्तमान काल में शास्त्रों का सौदा होना, जिसका श्लोक
- धिक् त्वाँ रे कलिकाल याहि विलयं केयं विपर्यस्तता,
हा कष्टं श्रुतशालिनामपि व्यवहृतिः म्लेच्छोचिता दृश्यते,
एकैव्रीड़ मय देवता भगवती विक्रेतुमानीयते,
निःशंकैरपरैः परीक्षण विधौ-सर्पैग मुद्धाश्यते ॥

४। शिवभूति केवली का दृष्टान्त - (कुंदकुंद स्वामी)
(तुसमासं घोसन्तो भावविसुद्धो महाणुभावो यँ।
णामेण य शिवभूई केवलणाणी फुडं जाओ।।

५- कौण्डेश ग्वाले का दृष्टान्त।

६- दीवान अमरचंद का दृष्टान्त - ये भगों की रक्षा होना।

७- एक स्त्री के सच्चे स्वाध्याय का दृष्टान्त, जो गृह कार्य को बहुत सावधानी के साथ जीवदया-पूर्वक करती थी।

८- स्वाध्याय करते हुए नींद में शास्त्र फाड़ने वाले का दृष्टान्त।

९- स्वाध्याय निमित्त अपने २ घरों में उत्तमोत्तम शिक्षा युक्त वाक्यों को मोटे अक्षरों में लिखकर टाँगना चाहिए। अश्लील चित्र नहीं। जैसे कि -
सरला न विदधीत कल्पमपि क्रियामविवेकः परमापदां
पदं। वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः।

१० बच्चों को समय पर अच्छी शिक्षा देना ही उनका स्वाध्याय है। द्यूतनिन्दा का दृष्टान्त —

— सुखं कतमो महानहमहं वैश्य कलशोऽप्युजगुरुः।
कोटिद्रव्यपतिः पिता मधुना भिक्षाचरो को महान्
तातो मे वञ्चिवः पश्योऽहमभयं चूर्णी ततोऽहं महान्।
दैन्यस्तं हर भार्यया विलसितं द्यूते ततोऽहं महान्॥

११- सद्विचार रखना, कुविचार को पास तक भी नहीं आने देना इसी का नाम स्वाध्याय है- इस विषय में दो मित्रों का दृष्टान्त (कुत्ता बिल्ली वाला देना)

१२- एक मनुष्य का एक बार ही शास्त्र सुनकर विरक्त हो जाना - परन्तु उनसे कई वर्ष पहिले से सुनने-वालों को ज्यों के त्यों रहने का दृष्टान्त देना।

१३- लेकिन हम इस विषय में कहां तक गिरे—
वैराग्यरंगो परवंचनाय, धर्मोपदेशो जनरंजनाय।
वादाय विद्याध्ययनं च मेऽभूत-कियद्ब्रुवे हास्यकरं स्वमीश।

१४ वर्तमान पंडितों का हाल—
यथा खरश्चन्दनभारवाही, भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।
एवं हि शास्त्राणि बहून्यधीत्य चार्थेषु मूढाः खरवद्वहन्ति॥

१५- निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्। अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

श्रुताभ्यास की महत्ता —

जह जह सुयमवगाहइ अइसयरसपसरसंजुयमउव्वं ।
तह तह पल्हाइ मुणी णव-णव-संवेगसद्धाए ॥

देश प्रेम की कविता -

१

मेरी जां न रहे, मेरा सर न रहे,
सामां न रहे, न ये साज रहे।
फक़त हिन्द मेरा आज़ाद रहे,
मेरी माता के सर पर ताज़ रहे ॥ टेक ॥

२

पेशानी पै शोभे जिसके तिलक,
और गोद में गान्धी मिराज रहे।
न ये दाग़ बदन में तफ़ेद रहे,
न, ये कोढ़ रहे, न ये खाज रहे ॥ टेक ॥

३

सिख, हिन्दू मुसलिमां, एक रहें,
ये अर्जुन से जैन तो प्रेम करें।
एक ग्रन्थ पुरान, कुरान रहे,
मेरी पूजा और नमाज़ रहे ॥ टेक ॥

४

मेरी टूटी मड़ैया में राज रहे,
कोई गैर न दस्तंदाज़ रहे।
मेरी बीन के तार मिले हों सभी,
इक धीमी मधुर आवाज रहे ॥ टेक ॥

५

ये किसान मेरे खुशहाल रहे,
पूरी होय फसल, सुख साज रहे।
मेरे बच्चे वतन पर निशार रहे,
मेरी मां बहिनों ईलाज रहे ॥ टेक ॥

६

मेरी गाएं रहे, मेरे बैल रहे;
और घर में भरा अनाज रहे।
घी. दूध की नदियां बहती रहे,
हरदम आनन्द स्वराज्य रहे ॥ टेक ॥

१

भाषासु मुख्या मधुरा, दिव्या गीर्वाणभारती ।
तस्माद्धि काव्यं मधुरं, तस्मादपि सुभाषितम् ॥

२

सुभाषितेन, गीतेन, युवतीनां च लीलया ।
मनो न भिद्यते यस्य, स योगी ह्यथवा पशुः ॥

३

संसार कटुवृक्षस्य, द्वे फले ह्यमृतोपमे ।
सुभाषितरसास्वादः, संगतिः सुजने जने ॥

४

सुभाषितरसास्वाद-बद्धरोमाञ्चकञ्चुकाः ।
विनापि कामिनीसंगं, कवयः सुखमासते ॥

५

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि, जलमन्नं सुभाषितम् ।
मूढैः पाषाणखण्डेषु, रत्नसंज्ञा विधीयते ॥

६

धर्मो यशो नयो दाक्ष्यं, मनोहारि सुभाषितम् ।
इत्यादि गुणरत्नानां, संग्रही नावसीदति ॥

७

संगीतं च साहित्यं, सरस्वत्याः स्तनद्वयम् ।
एकमापातमधुरमन्यदालोचनामृतम् ॥

८

द्राक्षा म्लान मुखीजाता, शर्करा चाश्मतां गता।
सुभाषितरसस्याग्रे, सुधाभीता दिवं गता॥

९

अकलितशब्दालङ्कृतिरनुकूला, स्खलित पदनिवेशापि।
अभिसारिकेव रमयति, सूक्तिः सोत्कर्षशृङ्गारा॥

१०

नायं प्रयाति विकृतिं, विरसो न यः स्या—
न्न क्षीयते बहुजनैर्नितरां निपीतः।
जाड्यं निहन्ति, रुचिमेति, करोति तृप्तिं,
नूनं सुभाषितरसो ऽन्यरसातिशायी॥

११

रचितं चापि सुभाषितेन रमते, स्वीयं मनः सर्वदा
श्रुत्वान्यस्य सुभाषितं, खलु मनः श्रोतुं पुनर्वाञ्छति॥
अज्ञाञ्ज्ञातचेताप्यनेन हि वशीकर्तुं समर्थो भवेत्—
कर्तव्यो हि सुभाषितस्य मनुजैरावश्यकः संग्रहः।

विद्या प्रशंसा

१

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं, विद्यते तव भारति ।
व्ययतो वृद्धिमायाति, क्षयमाप्नोति संचयात् ॥

२

सद्विद्या यदि का चिन्ता, वराकोदर पूरणे ।
शुकोऽप्यशनमाप्नोति, राम-रामेति च ब्रुवन् ॥

३

कुमतीर्दलितानुसारवती, बलवता रिपुणापि न नीयते ।
अविभागधरैर्न विभज्यते, विबुधबोधबुधैरपि सेव्यते ॥

४

मातेव रक्षति, पितेव हिते नियुङ्क्ते,
कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय खेदम् ।
लक्ष्मीं तनोति, वितनोति च दिक्षु कीर्तिं,
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ॥

५

विद्या नाम नरस्य कीर्तिरतुला, भाग्यक्षये चाश्रयो,
धेनुः कामदुघा, रतिश्च विरहे, नेत्रं तृतीयं च सा ।
सत्कारायतनं, कुलस्य महिमा, रत्नैर्विना भूषणं;
तस्मादन्यमुपेक्ष्य सर्वविषयं, विद्याधिकारं कुरु ॥

प्रहेलिका

१

1. अपदो दूरगामी च, साक्षरो न च पंडितः।
अमुखः स्फुटवक्ता च, यो जानाति सः पण्डितः॥
(लेखपत्रम्)

२

2. वने जाता, वने त्यक्ता, वने तिष्ठति नित्यशः।
पण्यस्त्री न तु सा वेश्या, यो जानाति सः पण्डितः।
(नौका)

३

3. गोपालो नैव गोपालः त्रिशूली नैव शंकरः।
चक्रपाणिः स नो विष्णुः यो जानाति स पण्डितः
(महोक्षः)

4. उच्छिष्टं शिवनिर्माल्यं, वमनं शवकर्पटम्।
काकविष्टासमुत्पन्नाः, पञ्चैते तिपवित्रकाः।
(दुग्धं, गङ्गा, मधु, पट्टाम्बर, पिप्पलवृक्ष)

5. अनेकसुषिरं वाद्यं, कान्तं च ऋषिसंज्ञितम्।
चक्रिणा च सदाराध्यं, यो जानाति स पंडितः॥
(वल्मीकिः)

6. वने वसति को वीरो, योऽस्थिमांसवर्जितः।
असिना कुरुते कार्यं, कार्यं कृत्वा वनं गतः॥
(कुलालस्य दोरकः)

7. रविजा, शशिकुन्ताला, तापहारी जगत्प्रिया।
वर्तते वनकोणे न, न तापी, यमुनापि न॥
(तक्रम्)

८. तरुण्यालिङ्गितः कण्ठे, नितम्बस्थलमाश्रितः।
गुरूणां सन्निधानेऽपि, कः कूजति मुहुर्मुहुः॥
(कलशः)

९. अवलोक्य स्तनौ वध्वा, गुञ्जाफलविभूषितौ।
निःश्वस्य रोदितुं लग्ना, कुतो व्याध कुटुम्बिनी॥
(श्लोके-एवमन्वयः)

१०. आपाण्डु पीनकठिनं, वर्तुलं सुमनोहरम्।
करैराकृष्यतेऽत्यर्थं, किं वृद्धैरपि सस्पृहम्॥
(पक्वबिल्वफलं, कुचमण्डलं च)

११. एकचक्षुर्न काकोऽयं, बिलमिच्छन्न पन्नगः।
क्षीयते वर्धते चैव, न समुद्रो न च चन्द्रमाः॥
(सूचिका)

१२. छत्रधारी न राजाऽसौ, जटाधारी न चेश्वरः।
स्वच्छकर्ता न स ब्रह्मा, छिद्रकर्ता न तस्करः॥

१३. अक्षि नास्ति शिरो नास्ति, बाहुरस्ति निरङ्गुलिः।
नास्ति पादद्वयं गाढ-मङ्गमालिङ्गति स्वयम्॥

१४. अस्ति ग्रीवा, शिरो नास्ति, द्वौ भुजौ करवर्जितौ।
सीताहरणसामर्थ्यो, न रामो न च रावणः॥ (कञ्चुकः)

१५. नरनारी समुत्पन्ना, सा स्त्री देहविवर्जिता।
अमुखी कुरुते शब्दं, जातमात्रा विनश्यति॥
(छोटिका)
(अंगुष्ठमध्यमांगुलिः)

१६. दन्तैर्हीनः शिलाभक्षी, निर्जीवो बहुभाषकः ।
गुणस्यूति समृद्धोपि, परपादेन गच्छति ॥
(उपानत्)

१७. न तस्यादिर्न तस्यान्तो, मध्ये यस्तस्य तिष्ठति ।
तवाप्यस्ति ममाप्यस्ति, यदि जानासि तद्वद ॥
(नयनम्)

१८. य एवादिः स एवान्तो, मध्ये भवति मध्यमः ।
य एतन्नाभिजानीयात् तृणमात्रं न वेत्ति सः ॥
(पवनम्)

१९ पर्वताग्रे रथो याति, भूमौ तिष्ठति सारथिः ।
चलते वायुवेगेन, पदमेकं न गच्छति ॥

२० श्यामं वर्तुलाकारं, पुंनाम चतुरक्षरम् ।
मकारादि मकारान्तं, यो जानाति स पण्डितः ॥

२१ अष्टपादश्चतुःकर्णो, द्विमुखी, द्विमुखस्तथा ।
राजद्वारे पठेद्धुरो, न देवो न च राक्षसः ॥

२२ वृक्षस्याग्रे फलं दृष्टं, फलाग्रे वृक्ष एव च ।
अकारादि सकारान्तं, यो जानाति सः पंडितः ॥
(अननास)

२३ चतुर्मुखो न च ब्रह्मा, वृषारूढो न शंकरः।
गिरीबीच निराहारी, अजरं धान्यमक्षयम्॥

२४ कृष्णमुखी न मार्जारी, द्विजिह्वा न च सर्पिणी।
पञ्चभर्ता न पाञ्चाली, यो जानाति स पण्डितः
(लेखनी)

२५ अपूर्वोऽयं मया दृष्टः, कान्तः कमललोचने।
शेदुनाम यो विजानाति, स विद्वान्नात्र संशयः॥
(अशोकः)

२६, पर्वताग्रे रथारूढो, भूमौ तिष्ठति सारथिः।
चक्रवद्भ्रमते पृथ्वी, तस्याहं कुलकालिका॥
(कुम्भकारस्य मुली)

२७. अर्धचन्द्रसमायुक्तं, पुंनाम चतुरक्षरम्।
ककारादि लकारान्तं यो जानाति पण्डितः॥

२८. सदारिमध्यापि न वैरियुक्ता, नितान्तरक्तापि सितैव नित्यम्।
यथोक्तवादिन्यपि नैव दूती, का नाम कान्तेति निवेदयाशु॥
(सारिका)

२९ वृक्षाग्रवासी न च पक्षिराज त्रिनेत्रधारी न च शूलपाणिः।
त्वग्वस्त्रधारी न च सिद्धयोगी, जलं च बिभ्रन्न घटो न मेघः॥
(नारिकेलफलम्॥

३०. वृक्षाग्रवासी, न च पक्षिजातिः तृणं च शय्या न च राजयोगी।
सुवर्णकायो न च हेमधातुः, पुंसश्च नाम्ना न च राजपुत्रः।
(आम्रः।)

३१ चक्री त्रिशूली न हरो न विष्णुर्महान्बलिष्ठो न च भीमसेनः
स्वच्छन्दगामी, न पार्वती योगी, सीतावियोगी न च रामचन्द्रः।
(वृषभः)

३२ आद्येन हीनो जलपान दृश्यं, मध्येन हीनं, भुवि वर्तिनी मम।
अन्तेन हीनं ध्वनते शरीरे हेमाधिपः सत्रियमातनोतु।
(कङ्कणः)

३३. सर्वस्वापहरो न दस्युकुलजः खड्गाङ्कितो प्रखरो,
दोषानिष्टकरो, न धर्मनिरतः कीलालपो नासुरः॥
तृणां पश्य पलाशनो न पिशुनः, प्राप्तुं गमो नो हयः,
शश्वद्रात्रिचरो न राक्षसगणः, को यं सखे ब्रूहि मे ॥
(मत्कुणः)

३४, जाता शुद्धकुले अपान पितरं, हत्वापि कुरुक्षा प्रभः।
स्त्री चैषा वनिता, पितैव सततं, विश्वस्य या जीवनम्।
तं च प्राप्य पितामहेन जनकं, प्रासूत या कन्यका,
सा सर्वैरपि वन्दिता क्षितितले, सा नोऽस्तु हा कन्यका।

अपह्नुतयः ।

१ अतनुरुपद्रवकोऽपि, धुनोति कायं, तनोति रोमाञ्चम् ।
किं तनुमध्ये प्रेयो, नहि तरिव मारुतोजवः शीतः ॥

२ तापमपूरोत्त्वाते, तुरगाननवक्षसः स्पन्दं त्यज ।
नहि कथमपि कलापिन मिहरुजन्तापी प्रिये कोकिल ॥

अपह्नुतयः

१

। अचिरस्नेहं वर्धयन्ती [illegible] ।
॥ [illegible] नहि नहि [illegible] ॥

२

[illegible] तनोति [illegible] ।
नागरिकः किं मिलितो नहि नहि सखि हे मनः पवनः ॥

३

काले पयोधराणामपतितया नैव शक्यते स्थातुम् ।
उत्कण्ठितासि बाले, नहि नहि सखि पिच्छिलः पन्थाः ॥

४

प्रहरति न पञ्चबाणः केवलमबले निशि घोऽपि ।
वर्षति परं न देवः क्षणदायां विप्रयोगं ते ॥

५

मधुरवचना धृततोषा, [illegible] सुशोभना सुदती ।
मत्स्कन्धे न्यचितदण्डा, भिक्षो दयिता सखि किं न, नेत्रिका ॥

६

रात्रौ भिनत्ति निद्रां, तल्पं न जहाति निष्ठुरे द्रवति ।
चतुरे किं प्राणेशो, नहि नहि सखि मत्कुणव्रातः ॥

७

आदौ गृहीतपाणिः, पश्चादारूढजघनकटिभागः ।
नखमुखलालनकुशलः, सा किं रमयति नैव भोः पामा ॥
(क्रमशः)

८

नापि विलोकय मेघं, नहि नहि पापं तवास्ति पुण्यभाजः ।
नहि कश्चनापि मेघः सपत्न्यस्य कञ्चुकी मुरसः ॥

९

पंचदशी रजनीसमा, तारामणिभूषणा पिकोऽलिनादा ।
चन्द्रसमा, गतवसना, हस्तगता स्त्री न, मे वीणा ॥

१०

अङ्कारम्भैर्लीभाजः, सालंकारस्य चारुवृत्तस्य ।
किं पूर्णो सखि पद्मो, नहि नहि सखि, पद्यबन्धस्य ॥

११

हृत्पुरोऽनिलकम्पितविग्रहा, मिलति कान्त वनस्पतिनालता ।
सुरसि किं सखि, कान्तरतोत्सवं, नहि घनागमरीतिरुदीरिता ॥

१२

तन्वी, चारुपयोधरा, सुवदना, श्यामा मनोहारिणी ।
नीता निष्करुणेन केनचिदहो, देशान्तरादागता ॥
उत्संगोऽन्वितया तया रहितया, किं जीवनं प्रेक्षसे,
निःक्षोभस्ते दयिता न किं, नहि नहि, प्राप्याप्रिया कुञ्चिका ॥

१३

या पाणिग्रहलालिता सुसरला, तन्वी, सुवंशोद्भवा,
गौरी स्पर्शसुखप्रदा, गुणवती, नित्यं मनोहारिणी ।
सा केनापि हृता तया विरहितो, गन्तुं न शक्नोऽस्म्यहं,
हे मित्र स्मर किं तव कामिनी, नहि, नहि, प्राणप्रिया यष्टिका ॥

पंडित प्रशंसा –

१

विद्वानेव विजानाति, विद्वज्जनपरिश्रमम् ।
नहि वन्ध्या विजानाति, गुर्वीं प्रसववेदनाम् ।

२

सत्यं तपो ज्ञानमहिंसता च, विद्वत्प्रणामं च सुशीलता च ।
एतानि यो धारयते स विद्वान्न केवलं यः पठते स विद्वान् ।

श्रावक –

जल छानन तज निशि अशन श्रावक चिन्ह जु तीन ।
तिन प्रति दर्शन जो करे सो श्रावक परवीन ।

अस्तं गते दिवानाथे तोयं रुधिरमुच्यते ।
अन्नं मांससमं प्रोक्तं देवदेवैर्जिनेश्वरैः ॥

पुरुषार्थ

पुद्गल राग अरु द्वेष की, हानि करे बुधिवंत ।
ता कैं कारन शिव पाइए, यह पुरुषार्थ विरतंत ॥

पंडित निन्दा

१

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं, द्विप इव मदान्धः समभवं,
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किंचित्किंचिद्बुधजनसकाशादवगतं,
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥

२

मूर्खत्वं सुलभं. भजस्व कुमते, मूर्खस्य चाष्टौ गुणाः,
निश्चिन्तो, बहुभोजनोऽतिमुखरो, रात्रिंदिवा स्वप्नभाक्,
कार्याकार्यविचारणान्धबधिरो, मानापमाने समः,
प्रायेणामयवर्जितो दृढवपुर्मूर्खः सुखं जीवति॥

नैयायिकप्रशंसा

१

मोहं क्षिणोति, विमलीकुरुते च बुद्धिं,
सूते च संस्कृतपदव्यवहारशक्तिम्।
शास्त्रान्तराभ्यसनयोग्यतया युनक्ति,
तर्कश्रमो न तनुते किमिहोपकारम्॥

नैयायिकनिन्दा

हे हे मित्र जिजीविषा यदि वालितो ? विप्रा, धनं चार्जितम्,
शेषेभ्यः शरयन्त्रदानमपि स तत्सम्पादितं भूरिशः॥
ग्रन्थाभ्यासपिकृता सुतर्कघटकाः, शास्त्रान्तरं कलं दूष्यते।
सोऽहं तर्कविमूढधीः ऽत्र गहने धात्रा श्रगालः कृतः॥

वैद्य प्रशंसा

१

गुरोरधीताखिलवैद्यविद्यः, पीयूषपाणिः कुशलः क्रियासु।
गतस्पृहो धैर्यधरः कृपालुः शुद्धोऽधिकारी भिषगीदृशः स्यात्॥

कुवैद्यनिन्दा —

१

वैद्यराज नमस्तुभ्यं, क्षपिताशेषमानव।
त्वयि विन्यस्तभारोऽयं, कृतान्तः सुखमेधते॥

२

चितां प्रज्वलितां दृष्ट्वा, वैद्यो विस्मयमागतः।
नाहं गतो न मे भ्राता, कस्येदं हस्तलाघवम्॥

पौराणिक निन्दा

१

पौराणिकानां व्यभिचार दोषो नाशंकनीयः कृतिभिः कदाचित्
पुराणकर्ता व्यभिचारजातस्तस्यापि पुत्रो व्यभिचारजातः

पुरोहितनिन्दा

१

पुरीषस्य च रोषस्य, हिंसायास्तस्करस्य च ।
आद्याक्षराणि संगृह्य, वेधाश्चक्रे पुरोहितम् ॥

कायस्थ निन्दा –

काकाल्लौल्यं, यमात्क्रौर्यं, स्थपतेर्दघातिताम् ।
आद्याक्षराणि संगृह्य कायस्थः केन निर्मितः ॥

२

कायस्थेनोदरस्थेन, मातुरामिष शङ्कया ।
अन्त्राणि यन्न भुक्तानि, तत्र हेतुरदन्तता ॥

सज्जन प्रशंसा

१

गङ्गा पापं, शशी तापं, दैन्यं कल्पतरुस्तथा।
घ्नन्ति
पापं तापंच दैन्यंच, हन्ति सन्तो महाशयाः॥

२

प्रकृतिप्रत्ययोपेतः, सद्वृतः साधुसंमतः।
अर्थार्पण समर्थश्च, सुश्लोक इव सज्जनः॥

३

दाता न दापयति, दापयिता न दत्ते, यो दान दापन परो मधुरं न वक्ति।
दानंच दापनमथो मधुरा च वाणी, त्रीण्यप्यमूनि खलु सत्पुरुषे वसन्ति॥

४

प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो, वाचि नियमः,
प्रकृत्या कल्याणी, मतिरनवगीतः परिचयः।
पुरो वा पश्चाद्वा, तदिदमविपर्यासितरसं,
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं, विजयते॥

५

घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्धं,
छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादु चैवेक्षु काण्डम्।
दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णं,
न प्राणान्ते प्रकृतिविकृतिर्जायते चोत्तमानाम्॥

६

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं, पापे रतिं मा कृथाः,
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं, सेवस्व विद्वज्जनान् ।
मान्यान्मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रच्छादय स्वगुणान्,
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम् ॥

७

सौम्ये पेशलता, गुणे प्रणयिता, हर्षे निरुत्सेकता,
साधौ सादरता, खले विमुखता, पापे परं भीरुता ।
पत्ने संवृतता, श्रुते सुमतिता, वित्ते दये त्यागिता
दुःखे क्लेशसहिष्णुता, च महतां कल्याणमाकांक्षति ।

८

गेहं दुर्गति बन्धुभिर्गुरुगृहं छात्रैरहंकारिभिः,
देहं पत्तनवञ्चकैर्मुनिजनैः शापोन्मुखैरस्थिमान् ।
सिंहव्याघ्रवनं खलैर्नृपसभां, चौरैर्दिगन्तानपि,
संकीर्णान्यवलोक्य सत्यसरलः साधुः कृविश्राम्यति ।

९

गर्वं नोद्वहते, न निन्दति परान्नो भाषते निष्ठुरं,
प्रोक्तं केनचिदप्रियं च सहते क्रोधं च नालम्बते ।
श्रुत्वा काव्यमलक्षणं परकृतं संतिष्ठते मूकवद्-
दोषांश्छादयते स्वयं न कुरुते ह्येतत्सतां लक्षणम् ॥

दुर्जननिन्दा –

१

खलः सर्षपमात्राणि, परच्छिद्राणि पश्यति ।
आत्मनो बिल्वमात्राणि, पश्यन्नपि न पश्यति ॥

२

अपूर्वः कोऽपि कोपाग्निः, सज्जनस्य खलस्य च ।
एकस्य शाम्यति स्नेहाद् वर्धते ऽन्यस्य वारितः ॥

३

दुर्जनं प्रथमं वन्दे, सज्जनं तदनन्तरम् ।
मुखप्रक्षालनात्पूर्वं, गुदप्रक्षालनं यथा ॥

४

जीवनग्रहणे नम्राः, गृहीत्वा पुनरुन्नताः ।
किं कनिष्ठाः किमु ज्येष्ठा, घटीयन्त्रस्य दुर्जनाः ॥

५

मुखं पद्मदलाकारं, वाचा चन्दनशीतला ।
हृदयं क्रोधसंयुक्तं, त्रिविधं धूर्तस्य लक्षणम् ॥

६

अहो प्रकृतिसादृश्यं, श्लेष्मणो दुर्जनस्य च ।
मधुरैः कोपमायाति, कटुकेनैव शाम्यति ॥

७

कापुरुषः कुक्कुरश्च, भोजनैकपरायणः ।
लालितः पार्श्वमायाति, वारितो न च गच्छति ॥

एतो निघ्नतमात्रति मामा क्षुद्रेषु मात विश्वासिना
तिङ्गूपोतोमपां. ते होऽप्यश्रूणि पातयति ॥

९

विद्याविवादाय,धनंमदाय.शक्तिः परेषां परिपीडनाय ।
खलस्य साधोः विपरीतमेतज्ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ।

१०

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः ; स्वार्थं परित्यज्य ये,
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः ; स्वार्थाविरोधेन ये ।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं. स्वार्थाय निघ्नन्ति ये,
ये तु .घ्नन्ति. निरर्थकं परहितं, ते के न जानीमहे ।

११

कस्त्वं भद्र, खलेश्वरोऽहमिह किं घोरे वने स्थीयते,
शार्दूलादिभिरेव हिंस्रपशुभिः खाद्योऽहमित्याशया
कस्मात्कष्टमिदं त्वया व्यवसितं, मद्देहमांसाशनः,
प्रत्युत्पन्ननृमांसभक्षणधियस्ते घ्नन्तु सर्वान्नरान् ॥

१२

भिक्षो. मांसनिषेवणं प्रकुरुषे. किं तेन मद्यं विना,
मद्यं चापि तवप्रियं .प्रियमहो, वाराङ्गनाभिः सह ।
वेश्या प्यर्थरुचिः कुतस्तव धनं, द्यूतेन चौर्येण वा,
चौर्यद्यूतपरिग्रहोऽपि भवतो, नष्टस्य कान्या गतिः ॥

०

लक्ष्मीस्वभावः —

१

सा स्वसद्मनि पद्मेऽपि. संध्यावधि विजृम्भते ।
इन्दिरा, मन्दिरेऽन्येषां, कथं तिष्ठति सा चिरम् ॥

२

दूरं त्यजामि वैधव्यादुदारं लज्जया पुनः ।
सापत्न्यात्पण्डितमपि, तस्मात् कृपणमाश्रये ॥

३

लक्ष्मि. क्षमस्व वचनीयमिदं दुरुक्तं,
अन्धीभवन्ति पुरुषास्त्वदुपासनेन ।
नो चेत् कथं. कमलपत्र विशाललोचनो,
नारायणः स्वपिति पन्नगभोगतल्पे ॥

४

पद्मे, मूढजने ददासि द्रविणं. विद्वत्सु किं मत्सरो,
नाहं मत्सरिणी न चापि चपला, नैवास्ति मूर्खे रतिः ।
मूर्खेभ्यो द्रविणं ददामि नितरां तत्कारणं श्रूयतां,
विद्वान्सर्वगुणेषु पूजिततनु मूर्खस्य नान्या गतिः ॥

५

आलस्यं स्थिरतामुपैति भजते, चापल्यमुद्योगितां,
मूकत्वं मितभाषितां वितनुते, मौढ्यं भवेदार्जवम् ॥
पात्रापात्रविचारणाविरहिता, यच्छत्युदारात्मतां.
मातर्लक्ष्मि, तव प्रसादवशतो दोषाः अमी स्युर्गुणाः ॥

६

प्रश्न

हे लक्ष्मि क्षान्तिके त्वमावञ्चयते, मूढेन च पापेऽधर्मे,
नत्वं, योत्तमपाल मित्थमीक्षले, प्रायेण दुष्कारिणि।
ये देवाञ्चन सत्यशौचनिरताः, तेषां पार्श्वे रता:,
स्तम्भोलज्जासि निर्दये, गतमति लीन्यो जनोय व्लक्ष:

७ उत्तर

नाहं दुष्कारिणी न चापि चपला, मूर्खेन मे रोचते,
नो शूरो न च पंडितो न च शठो दीनाक्षरो नै व च।
यस्मिन् कृत पुण्य योग विभवो भुङ्क्ते स मे सत्फलं,
लोकानां विमसलिता स्वोपि पुनर्दृष्ट्वा परां त्यज्यते।

८

पीतेऽगस्त्येन तातश्चरणतलहतो वल्लभोऽन्येन रोषात्
आबाल्याद्विप्रवर्यैः स्ववदनविवरे धारिता वैरिणी मे।
गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तपूजानिमित्तं,
तस्मात् खिन्ना सदाहं, द्विजकुल सदनं, नाथ नित्यं त्यजामि

धन-प्रशंसा –

१

अहो कनकमाहात्म्यं वक्तुं केनापि शक्यते ।
नामसाम्यादहो चित्रं, धत्तूरोऽपि मदप्रदः ॥

२

बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते, पिपासितैः काव्यरसो न पीयते ।
न छन्दसा केनचिदुद्धृतं कुलं, हिरण्यमेवार्जय निष्फला गुणाः ॥

३

जातिर्यातु रसातलं गुणगणस्तत्राप्यधो गच्छतु,
शीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः, संदह्यतां वह्निना ।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं,
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ॥

४

माता निन्दति, नाभिनन्दति पिता, भ्राता न संभाषते,
भृत्यः कुप्यति, नानुगच्छति सुतः, कान्ता च नालिंगते ।
अर्थप्रार्थनशंकया न कुरुते, संभाषणं वै सुहृत् –
तस्माद्द्रव्यमुपार्जयस्व सुमते, द्रव्येण सर्वे वशाः ।

—— ० ——

धननिन्दा –

१

लक्ष्मीवन्तो न जानन्ति, प्रायेण परवेदनाम् ।
शेषे धराभरक्लान्ते, शेते नारायणः सुखम् ॥

२

वरं हालाहलं पीतं, सद्यः प्राणहरं विषम् ।
न तु दृष्टं धनान्धस्य, भ्रूभङ्गकुटिलं मुखम् ॥

३

बधिरयति कर्णविवरं, वाचं मूकयति, नयनमन्धयति ।
विकृतयति गात्रयष्टिं, संपद्रोगोऽयमद्भुतो राजन् ॥

४

वरमिह वनतरुतलवासो, वरमिह भिक्षा वरमुपवासः
वरमपि घोरे नरके पतनं, न च धनगर्वितबान्धवशरणम् ॥

५

तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम,
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव,
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥

६

आपद्गतं हससि किं द्रविणान्धमूढ, लक्ष्मीः स्थिरा न भवतीति किमत्र चित्रम् ।
एतान् प्रपश्यसि घटान् जलयन्त्रचक्रे,
रिक्ताः भवन्ति भरिताः, भरिताश्च रिक्ताः ॥

धनिप्रशंसा :-

१

वयोवृद्धास्तपोवृद्धाः ज्ञानवृद्धाश्च ये परे ।
ते सर्वे धनवृद्धस्य, द्वारे तिष्ठन्ति किंकराः ॥

२

एहि, गच्छ, पतोत्तिष्ठ, वद मौनं समाचर ।
एवमाशाग्रहग्रस्तैः, क्रीडन्ति धनिनोऽर्थिभिः ॥

३

हेतुप्रमाणयुक्तं, वाक्यं न श्रूयते दरिद्रस्य ।
अप्यति परुषमसत्यं, पूज्यं वाक्यं समृद्धस्य ॥

४

पादाश्रितादंष्ट्राविनासनाथे, पञ्चापि शाप्यशातानि वसन्ति ।
यानि पुनर्निवसन्तिमठीश्रे, तानि न यान्ति च दृश्यफलानि ॥

५

धिगस्त्वेतां विद्यां, धिगपि कवितां, धिक् सुजनतां,
वयोरूपं धिग्धिग्धिगपि च येषां निर्धनयतः ।
असौ जीयादेकः, सकलगुणहीनोऽपि धनवान्,
यदि यस्य द्वारे, तृणलवनिभाः सन्ति गुणिनः ॥

दरिद्रनिन्दा

१

हे दारिद्र्य नमस्तुभ्यं, सिद्धोऽहं त्वत्प्रसादतः ।
पश्याम्यहं जगत्सर्वं, न मां पश्यति कश्चन ।।

२

परीक्ष्य सत्कुलं विद्यां, शीलं शौर्यं सुरूपताम् ।
विधिर्ददाति निपुणः, कन्यामिव दरिद्रताम् ।

३

रात्रौ जानुर्दिवा भानुः कृशानुः सन्ध्ययोर्द्वयोः ।
पश्य शीतं मयानीतं, जानुभानुकृशानुभिः ।।

४

धन्यास्ते ये न पश्यन्ति, देशभङ्गं कुलक्षयम् ।
परचित्तगतान् दारान्, पुत्रंच व्यसनातुरम् ५

५

दारिद्र्य भोस्त्वं परमं विवेकि, गुणाधिके पुंसि सदानुरक्तः
विद्याविहीने गुणवर्जिते च, मुहूर्तमात्रं न रतिं करोषि ।

६

दारिद्र्य शोचामि भवन्तमेवमस्मच्छरीरे सुहृदित्युषित्वा
विपन्नदेहे मयि मंदभाग्ये, ममेति चिन्ता क्व गमिष्यसि त्वम्

७

√ अहो नु कष्टं सततं प्रवासः, ततोऽतिकष्टं परगेहवासः ।
कष्टाधिका नीचजनस्य सेवा, ततोऽतिकष्टा धनहीनता च

२

८

अर्थाः नसन्ति नच मुञ्चति मां दुराशा

त्यागान्न संकुचति दुर्ललितं मनो मे ।

याञ्चा च लाघवकरी स्ववधे च पापं

प्राणाः स्वयं व्रजत किं प्रविलम्बितेन ॥

९

निरस्थोन्नालीकं क्षुदुपहतसीदत्परिजनं,

विना दीपान्धकं सुखगहन संकुचित शिरस्म ।

अनाक्रान्ताक्षीर्णं प्रणमिभिरपूर्णोत्थ वसहो,

गृहं कारातुल्यं भवति खलु दुःखाय गृहिण्याः ॥

१०

मारोदीर्बिष्मिलेहि वत्सरुचिरान् छद्माद्यबालातिमा-

नायातस्तव वत्स दास्यति पिता, ग्रैवेयकं वाससी।

श्रुत्वैवं गृहिणीवचांसि, निकटे कुड्यस्य निष्किंचनो,

निःश्वस्याश्रुजलप्लवप्लुतमुखः पान्थः पुनः प्रस्थितः ॥

११

वासःखण्डमिदं प्रयच्छ, यदि वा, स्वाङ्के गृहाण्यामुकिं,

रिक्तं भक्तमल, नाथ भवतः पश्चे पलालस्तरः।

दम्पत्योरिति जल्पितं निशि यदा चोरः प्रविष्टस्तदा।

लब्धं कर्पटमन्यतस्तदुपरि क्षिप्त्वा रुदन्निर्गतः ॥

१२

वृद्धोऽन्धः पतिरेषमञ्चकगतः, स्थूणावशेषं गृहं,
कालोऽभ्यर्णजलागमः, कुशलिनी वत्सस्य वार्तापि नो।
यत्नात्संचिततैलबिन्दुघटिका भग्नेति पर्याकुला,
दृष्ट्वा गर्भभरालसां निजवधूं श्वश्रूश्चिरं रोदिति॥

१३

दग्धं खाण्डवमर्जुनेन बलिना, दिव्यैर्द्रुमैः सेवितं,
दग्धा वायुसुतेन रावणपुरी लंका पुनः स्वर्णभूः।
दग्धः पंचशरः पिनाकपतिना, तेनाप्ययुक्तं कृतं,
दारिद्र्यं जनतापकारकमिदं, केनापि दग्धं नहि॥

१४

उत्तिष्ठ क्षणमेकमुद्वह सखे, दारिद्र्यभारं मम,
श्रान्तस्तावदहं चिरान्मरणजं, सेवे त्वदीयं सुखम्।
इत्युक्तं धनवर्जितस्य वचनं, श्रुत्वा श्मशाने शवो,
दारिद्र्यान्मरणं वरं वरमिति ज्ञात्वैव तूष्णीं स्थितः॥

१५

मद्गेहे मुषकीव मूषकवधूर्मूषीव मार्जारिका,
मार्जारीव शुनी शुनीव गृहिणी वाच्यः किमन्यो जनः।
इत्यापन्नशिशून्सुतान् विजहतो दृष्ट्वा तु भिल्लीरवैः—
लूतातन्तुवितानवेष्टनमुखी चुल्ली चिरं रोदिति॥

१६

पीठाः कच्छपवत्तरन्ति सलिले, भेका जिनीमीनव-
द्वीसर्पास्त्विचरन्ति निकुरते, संत्रस्तपत्नी शिशून्।
शूर्पाच्छादितमस्तका च गृहिणी, भित्तिः प्रपातोन्मुखी,
शैलोपूर्णतडागसंनिभमभूद्राजन् मदीयं गृहम्॥

१७

दारिद्र्येण सतीरितापि बहुशः कण्ठं समालम्बते,
कण्ठात्कष्टशतैः कथं कथमपि, प्राप्नोति जिह्वातलम्।
जिह्वाकीलककीलितेव सुदृढं तस्मान्न निर्यात्यसौ,
वाणी प्राणपरिक्षयेपि महतां, देहीति नास्तीति च॥

१८

आसेचेत्स्वागारे कुटुम्बभरणं, कर्तुं न शक्तोऽस्म्यहम्,
सेवे चेत्सुखलभ्यतं मुनिवनं, मुष्णन्ति मां तस्कराः।
स्वप्ने चेत्स्वतनुं त्यजामि नरकाद्भीरामहत्यावशा-
न्नो जाने करवाणि, दैव, किमहं मर्तुं न वा जीवितम्॥

१९

येः कारुण्यपरिग्रहान्नगणिताः स्वार्थाः परार्थं प्रति,
येष्वासन्त दयापरैर्न विहिता वन्ध्यार्थिनां प्रार्थना।
ये चासन् परदुःखदुःखितधियस्ते जन्यवोऽस्तंगताः,
चक्षुः संहर, बाष्पवेगमधुना, कस्याग्रतो रुद्यते॥

२०

आसीत्ताम्रमयं शरीरमधुना सौवर्णवर्णं गतं,
मुक्ताहारलता सुबिन्दुनिवहैर् निःस्यन्द मे कल्पिता।
स्वल्पं स्वल्पमनल्पकल्पमधुना दीर्घं वपुः कल्पितं,
स्वामिन्नुग्र, भवद्विरहवशतः किं किं न लब्धं मया॥

लोभनिन्दा –

१

लोभः प्रतिष्ठा पापस्य, प्रसूतिर्लोभ एव च ।
द्वेषक्रोधादिजनको लोभः पापस्य कारणम् ।

२

लोभात्क्रोधः प्रभवति, क्रोधाद्द्रोहः प्रवर्तते ।
द्रोहेण नरकं याति, शास्त्रज्ञोऽपि विचक्षणः ।

३

लोभात्क्रोधः प्रभवति, लोभात्कामः प्रजायते ।
लोभान्मोहश्च नाशश्च, लोभः पापस्य कारणम् ॥

४

स्नेहोपपन्न इतिपूर्णदशाविशेष,
शाली यमी अपि वसुप्रकरं निधाय ।
लब्धोदयेतमध गच्छति यत्र कम्पो,
दीपा भवन्ति कलुषावलवातवृत्तिलोभः ॥

५

यदुर्गामटवीमटन्ति विकटं, क्रामन्ति देशान्तरं,
गाहन्ते गहनं समुद्रमथनक्लेशां कृषिं कुर्वते ।
सेवन्ते कृपणं पतिं गजघटासंघट्टदुःसंचरम्.
सर्पन्ति प्रधनं धनान्धितधियस्तल्लोभविस्फूर्जितम्

(५३६२)

उदार प्रशंसा –

१

अयं निजः परो वेति, गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु, वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

२

उत्पादिता स्वयमिदं, यदि तत्तनूजा,
तातेन वा यदि तदा भगिनी खलु श्रीः ।
यद्यन्यसंगमवती च तदा परस्त्री,
तत्त्यागबद्धमनसः सुधियो भवन्ति ॥

२

नित्यं या गुरुभृत्यबन्धु सुजनैर्स्वेच्छया भुज्यते,
पश्यन्ति स्पृहयालवो न रिपवो यां विक्रमास्वादिताम् ।
यस्याः साधु परिक्षयेण सुहृदां नाशो न वा संभवो,
नो संपाद्यिपदेव सा गुणवती प्रीतिस्तया कीदृशी ।

कृपणनिन्दा

१

कृपणेन समो दाता न भूतो न भविष्यति ।
अस्पृशन्नेव वित्तानि, यः परेभ्यः प्रयच्छति ।

२

बोधयन्तीति याचन्ते, भिक्षाद्वारा गृहे गृहे ।
दीयतां दीयतां नित्यम् अदातुः फलमीदृशम् ॥

३

कृपणः स्ववधूसंगं, करोतीति भयादिह ।
भविता यदि मे पुत्रः, स मे वित्तं हरेदिति ॥

४

यैदोऽधः क्षितौ वित्तं, निचखान मितंपचः ।
तदधो निरयं गन्तुं, चक्रे पन्थानमग्रतः ॥

५

सन्ति दीक्षा फले क्षीरे, मद्दीमास्वादनं गुडे ।
अहो मातुरियं रीतिः कृपणे याम कीर्तिनि ॥

६

याच्यमानजनमानसवृत्तेः पूरणाय बत जन्म न यस्य ।
तेन भूमिरतिभारवतीयं, न द्रुमैर्न गिरिभिर्न समुद्रैः ॥

७

यास्मीते वा वनगोचराः प्राप्नुवन्ति साधं पिलुस्त्रवनास्थिषः ।
नतु धनाढ्याः कृपणाः, फणानिहितरत्नभुजंगम इवस्तरः ॥

२

जहाति सहसासनं झटिति पृच्छति स्वागतं,
नमस्यति कृताञ्जलिः स्तुतिमनोहरं भाषते ।
ददाति कुसुमंफलं शिथिलयत्यभीष्टक्रिया-
महो न परिचीयते कृपणवञ्चनाचातुरी ॥

याचक निन्दा

१

वेपथुर्मलिनं वक्त्रं, दीना वाग्गद्गदः स्वरः।
मरणे यानि चिह्नानि, तानि चिह्नानि याचके।

२

देहीति वचनं श्रुत्वा, देहस्थाः पञ्च देवताः।
मुखान्निर्गत्य गच्छन्ति, श्रीह्रीधीधृतिकीर्तयः॥

३

देहीति वक्तुकामस्य यद्दुःखमुपजायते।
दाता चेत्तद्विजानीयाद् दद्यात्स्वपिशितान्यपि॥

४

तीक्ष्णधारेण खड्गेन, वरं जिह्वा द्विधाकृता।
न तु मानं परित्यज्य, देहि देहीति भाषितम्॥

५

तावन्महतां महती, यावत्किमपि न याच्यते लोकम्।
बलिमनुयाचनसमये, श्रीपतिरपि वामनो जातः।

६

क्व गन्तासि भ्रातः — कृतवसतयो यत्र धनिनः।
किमर्थं प्राणानां स्थितिमनुविधातुं कृपणधीः।
धनैर्योऽज्वालयैर्न तु पीतसेवोऽस्य धनिकः,
निकेतोऽग्रे पश्चादृत महदमो स्तादिह धनम्॥

उत्तम लक्षण

पात्रे त्यागी गुणे रागी भोगी परिजनैः सह
शास्त्रे बोद्धा रणे योद्धा पुरुषः पंचलक्षणः॥

श्रावक के चिह्न

जल छानत तज निशि अशन श्रावक चिन्हसु तीन।
नितप्रति दर्शन जो करै, सो श्रावक परवीन॥

श्रद्धालुतां श्राति श्रणोति शासनं
दीनं वपेदाशु वृणोति दर्शनम्।
कृन्तत्यपुण्यानि करोति संयमं
तं श्रावकं प्राहुरमी विचक्षणाः॥

परोपकार प्रशंसा –

१

परोपकारः कर्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि ।
परोपकारजं पुण्यं, न स्यात् क्रतुशतैरपि ॥

२

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः, परोपकाराय वहन्ति नद्यः ।
परोपकाराय दुहन्ति गावः, परोपकारार्थमिदं शरीरम् ।

३

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन, दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन ।
विभाति कायः खलु सज्जनानां, परोपकारेण न चन्दनेन ।

४

रात्रिभोजन निषेधः –
अस्तं गते दिवानाथे तोयं रुधिरमुच्यते ।
अन्नं मांससमं प्रोक्तं मार्कण्डेयेन महर्षिणा ।

अष्टमी, चतुर्दशी, पंचमी
व्रत का महत्त्व —

अष्टमी चाष्ट कर्मघ्नी
सिद्धिलाभा चतुर्दशी।
पंचमी ज्ञान लाभाय
तस्मात्त्रितयमाचरेत् ॥८४॥

(पूज्यपाद उपासकाचार से)

२

पूजाकोटिसमं स्तोत्रं स्तोत्रकोटिसमो जपः।
जपकोटिसमं ध्यानं ध्यानकोटिसमो लयः॥

([illegible]
[illegible] श्लोक ९ ।

संतोष प्रशंसा –

१

संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम् ।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥

२

मलिन्दना यदि जनः परितोषमेति, नन्वप्रयत्नसुलभोऽयमनुग्रहो मे,
श्रेयांसि निर्मितिपुरुषाः परतुष्टिहेतोर्दुःखार्जितान्यपि धनानि परित्यजन्ति ।

३

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या,
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः ।
सहि भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला ,
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ॥

४

मृत्युर्भ्राम्यति मूर्ध्नि व्याघ्रवदुग्री घोरा जरारूपिणी,
लोभः पांशुसमो पापिनयमेभिर्निगृह्य जगद् ग्रस्यते ।
धूत्वा बोधजलैरबोधबहुलं तल्लोभजन्यं रजः,
संतोषामृतसागराम्भसि चिरं मग्नः सुखं स्थास्यसि ॥

तृष्णा निन्दा —

१

तृष्णां चेह परित्यज्य, को दरिद्रः क ईश्वरः।
तस्याश्चेत्प्रसरो दत्तो, दास्यं च शिरसि स्थितम्॥

२

आशा नाम मनुष्याणां, काचिदाश्चर्यशृङ्खला।
यया बद्धाः प्रधावन्ति, मुक्तास्तिष्ठन्ति पङ्गुवत्॥

३

तेनाधीतं श्रुतं सर्वं, तेन सर्वमनुष्ठितम्।
येनाशाः पृष्ठतः कृत्वा, नैराश्यमवलम्बितम्॥

४

आशाया ये दासाः, ते दासाः सर्वलोकस्य।
आशा येषां दासी, तेषां दासायते लोकः॥

५

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं, दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं, तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम्॥

६

दिनयामिन्यौ सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः॥

७

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं शय्या च भूः परिजनो निजदेहमात्रम्
वस्त्रं च जीर्णशतखण्डमयी च कन्था, हा हा तथापि विषयान्न —
जहाति चेतः॥

८

गतो दन्ता: दन्ता:, पलितकलितः कुन्तलभरः,
तमः छन्नं नेत्रं निबिडपटलीनः श्रुति पुटे ।
अभूदङ्गं ग्रन्थिवलयवल्ली विलुलितम,
तथाप्येतच्चेतस्तृष्णाइव धावत्यनुदिनम् ॥

९

गतँ तत्तारुण्यं, तरुणि हृदयानन्दजनकं,
विशीर्णा दन्तालीर्निजगतिरहो यष्टिशरणा ।
जडीभूता: दृष्टि: श्रवणरहितं कर्णयुगलं,
मनो मे निर्लज्जं, तदपि विषयेभ्य: स्पृहयति ।

१०

वपु: कुब्जीभूतं, गतिरपि तथा यष्टिशरणा,
विशीर्णा दन्ताली: श्रवणविकलं श्रोत्रयुगलम् ।
शिर: शुक्लं चक्षुस्तिमिरपटलैरावृतमहो,
मनो मे निर्लज्जं, तदपि विषयेभ्य: स्पृहयति ॥

११

अहो तृष्णा येषा, सकलजनतामोहनकरी,
विदग्धा मुग्धानां, हरति, चिरशान्तां शमधनाम् ।
विवदी सादक्षा सहतरलतारै: प्रणयिनी-
कटाक्षै: कूटाक्षै: कपटकुटिल: कामकितव: ॥

१२

निःस्वो निष्कशतं, शती दशशतं लक्षं सहस्राधिपो,
लक्षेशः क्षितिपालतां, क्षितिपतिश्चक्रेशतां वाञ्छति।
चक्रेशः पुनरिन्द्रतां सुरपतिर्ब्राह्मं पदं वाञ्छति,
ब्रह्मा शंभुपदं, हरो हरिपदं ह्याशावधिं को गतः॥

१३

दैत्यं च्छलितं विमातरलितं पाण्डुक्या कम्पितं,
दृष्टं कुञ्चालितं बलेन गलितं रूपश्रिया प्रोज्झितम्।
प्राप्तं मां कृतमृत्युपतेरिह महाघाट्यां धरायामिवं,
तस्मात् केवल मे कि कैव सुमती, धीरा दुरोन्त्याति॥

१४

भ्रान्तं यत्न तत्परेण मनसा, देहीति वाक्प्रेरिता,
भुक्तं मानविवर्जितं परगृहे, साशंकया काकवत्।
सोढं भ्रुकुटीकटाक्ष कुटिलं, दृष्टं खलानां मुखं,
तृष्णे देवि यदन्यदिच्छसि पुनस्तत्रापि सज्जा वयम्॥

१५

भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं, प्राप्तं न किंचित्फलं,
त्यक्त्वा जाति कुलाभिमानमुचितं सेवाकृता निष्फला।
भुक्तं मानविवर्जितं परगृहेष्वाशंकया काकवत्—
तृष्णे जृम्भसि पापकर्मनिरते नाद्यापि संतुष्यसि।

११०८

[illegible] तो, मोहेन दारग्रह—
[illegible] सुहृत्सम्बन्धिनानुभुवः।
त[illegible]पारिभवानौचित्यचिन्ताजुषः,
किं [illegible] रतोऽन्यो मया लीकृतः॥

१७

शान्तेर्मे तुष्टिरेका तातपितुरपि कृपणं मङ्क्षु कृत्वा प्रपञ्चम्,—
माता मोक्षा स्वतन्त्रा व्रजति परगृहे न सदा वीतलज्जा।
संधत्ते मत्कराले समयमनियमौ भ्रातरौ भर्त्सयन्ती,
पुत्री चैवाल्पबन्धूँस्तदपि पुनरहो हन्त वन्ध्यां श्रयामः॥

१८

लज्जे त्वं मज्जसिन्धो गिरिवरशिखरे त्वं च तिक्तप्रतीके,
शान्ते शोके दिशान्ते कुटिलवसति महो गर्वदिव्यौ भवाम्बु॥
तेजः पातालमूलं भज भुवि भगवन्मान मानाम्भोऽमृतु,
प्रेम्णैकामाश्रयन्तीं सतत महिमां दर्पनाशं भासिषे॥

तीज. पंचमी. अष्टमी. ग्यारस और चौदस

पर्व का (२) रहस्य —

तृतिय दोऊ धर्म हितकार, सुनो धारो दो धर्म प्रकार।
यतिधर्म है मुक्ति-द्वार, श्रावकधर्म स्वर्गसुखकार,

पंचमी का रहस्य -

पांचैं पांच बरतकी भाय, मन वच करै तो सुरगां जाय।

अष्टमी का रहस्य -

आठैं आठ कर्म क्षय करै, आठ मूलगुण हियडै धरै।

एकादशी का रहस्य -

एकादशी करै करम चूर, ग्यारा चैत्य वधावै नूर।

चतुर्दशी का रहस्य -

चउदसि चौदह है गुणठाण, चौदे सु पावै पंचम ठाण।।

(बंबई भवन के गुटका नं. ६०
वि. सं. १८०९ पेज १३६-४०

१२°

वणिग्-निन्दा

अपल्कमाते ग्रसदत्तं प्रत्यक्षरतेऽपि तंत्रग्रं कुरुते।
क्रय-विक्रयेऽपि लुण्टति, तथापि लोके वणिक् साधुः॥

धीर प्रशंसा —

१

"विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः",

२

निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

३

कान्ताकटाक्षविशिखा, न लुनन्ति यस्य,
चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः।
कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशाः,
लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः॥

४

स एव धन्यो विपदि, स्वरूपं यो न मुञ्चति।
त्यजत्यर्ककरैस्तप्तं, हिमं देहं न शीतताम्॥

५

अङ्गणवेदी वसुधा, कुल्या जलधिः, स्थली च पातालम्।
वल्मीकश्च सुमेरुः, कृतप्रतिज्ञस्य धीरस्य॥

मोह-माहात्म्य-

क्व यामः किं कुर्मः कथमिह सुखं किं नु भविता
कुतो लभ्या लक्ष्मीः क इह नृपतिः सेव्यत इति ।
विकल्पानां जालं जडयति मनः पश्यत सता-
मपि ज्ञातार्थानामिह महदहो मोहचरितम् ॥

(पद्मनन्दि पंचविंशतिका)

१

बहवः पशवोपीह, नराः शास्त्राण्यधीयते,
विरलाः रिपुखड्गाग्रधारापातसहिष्णवः ।

२

विनाप्यर्थैर्वीरः स्पृशति बहुमानोन्नतिपदं,
समायुक्तोप्यर्थैः परिभवपदं याति कृपणः ।
स्वभावादुद्भूतां गुणसमुदयावाप्तिविषयां,
द्युतिं सैंहीं किं श्वा धृतकनकमालोपि लभते ।

३

को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशस्तथा,
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम् ।
यद्दंष्ट्रानखलाङ्गूलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते,
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः ॥

४

सामोपायनयप्रपञ्चपरवः प्रायेण ये भीरवः,
शूराणां व्यवसाय एव हि परं संसिद्धये कारणम् ।
विस्फूर्जद्विकटाग्रगजघटापीठैकसंचूर्णन –
सोपायैकपथस्य सन्ति विजये सिंहस्य के मन्त्रिणः ॥

मनस्वी प्रशंसा

१

मनस्वी म्रियते कामं, कार्पण्यं न तु गच्छति ।
अपि निर्वाणमायाति, नानलो याति शीतताम् ॥

२

क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनं,
क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ।
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो,
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥

३

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः,
ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नः ।
इत्थं मानद नातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तरं,
यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो निःस्पृहाः ॥

४

नास्माकं शिबिका न चास्ति कटकाद्यलंक्रियासत्क्रिया,
नोत्तुङ्गस्तुरगो न कश्चिदनुगो नाप्यम्बरं सुन्दरम् ।
किन्तु क्ष्मातलवर्त्यशेषविदुषां, साहित्यविद्याजुषां,
चेतस्तोषकरी शिरोनतिकरी, विद्यानवद्यास्ति नः ॥

५

अर्थानामीशिषे त्वं, वयमपि च गिरामीश्महे यावदित्थं,
शूरस्त्वं वादिदर्पज्वरशमनविधावक्षयं पाटवं नः ।
सेवन्ते त्वां धनाढ्या, मतिमलहतये मामपि श्रोतुकामा,
मय्यप्यास्था न चेत्त्वयि मम सुतरामेष राजन्गतोऽस्मि ।

संसारः

१

क्वचिद्विद्वद्गोष्ठी, क्वचिदपि सुरामत्त कलहः ।
क्वचिद्वीणावादः क्वचिदपि च हाहेति रुदितम् ।
क्वचिद्रम्या रामा, क्वचिदपि जराजर्जरतनुः,
नजाने संसारः, किममृतमयः किं विषमयः ॥

२

कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये नियमिततनुभिः स्थीयते गर्भगर्ते,
कान्ताविश्लेष दुःखव्यतिकरविषमो यौवने विप्रयोगः ।
नारीणामप्यवज्ञा विलसति नियतं वृद्धभावोऽप्यसाधुः,
संसारे रे मनुष्याः वदत यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किंचित् ॥

अहिंसाधर्म: ७२

" पंचकृत्व: किलैकस्य, मत्स्यस्याहिंसना पुरा
अभूत्पश्चापदोऽतीत्य, धनकीर्तिः पतिः श्रियः
मृगसेन नाम के एक धीवर ने एक मुनि से केवल
यह व्रत लिया था कि जाल में आई हुई प्रथम मछ-
ली को नहीं मारूँगा - उसी दिन जाल डालने पर
पांच बार उसी मछली के आने पर उसे छोड़ता
गया - इतने में शाम हो गई, और वह खाली ही
[illegible]
आया; स्त्री ने क्रोधित हो घर में नहीं घुसने दिया
तब वो एक ही वृक्ष नीचे सो गया - सोते में सांप
ने खा लिया, यह देख कर स्त्री भी दुखित हुई.
और यह कह के कि जो पति का व्रत था वही मेरा -
पति के पास जा सोई, उसी सांप ने आके उसे
भी काट लिया - मर के उच्च आचरण हुए, और
[illegible] तप कर मोक्ष गए

(यशस्तिलकचम्पू आ०)

बनारसीदासजी की सलाम

जगत के मानी जीव ह्वै रह्यो गुमानी ऐसो
आस्रव असुर दुखदानो महाभीम है।
ताको परिताप खंडिवेको परगट भयो,
धर्म को धरैया कर्म रोग को हकीम है॥
जाके परभाव आगे, भागें परभाव सब,
नागर नवल सुख सागर की सीम है।
संवर को रूप धरै, साधै शिवराह ऐसो
ज्ञानी पातशाह ताको मेरी तसलीम है॥

राजा भोज से सम्बन्ध रखने वाली कथायें

रोहक नामक मंत्री और राजा की बात चीत –

मं० आपदर्थे धनं रक्षेत् –

रा० भाग्यभाजः क्वापदः ।

मं० दैवं हि कुप्यते क्वापि,

रा० संचितोऽपि विनश्यति ॥

२

भोज के पहनने के कंकणों में ४ आर्यायें खुदी थीं –

१

इदमन्तरमुपकृतये प्रकृतिचला यावदस्ति संपदियम् ।
विपदि नियतोदितायां, पुनरुपकर्तुं कुतोऽवसरः ॥

चन्द्र से २

निजकरनिकरसमृद्ध्या, धवलय भुवनानि पार्वणशशाङ्क ।
सुचिरं हन्त न सहते, हतविधिरिह सुस्थितं किमपि ॥

ताला(ब) से ३

अयमवसरः सरस्ते, सलिलैरुपकर्तुमर्थिनामनिशम् ।
इदमपि सुलभमम्भो, भवति पुरा जलधरा(भ्यु)दये ॥

नदी से ४

कतिपयदिवसस्थायी, पूरो दूरोन्नतोऽपि भविता ते ।
तटिनि, तटद्रुमपातिनि, पातकमेकं चिरस्थायि ॥

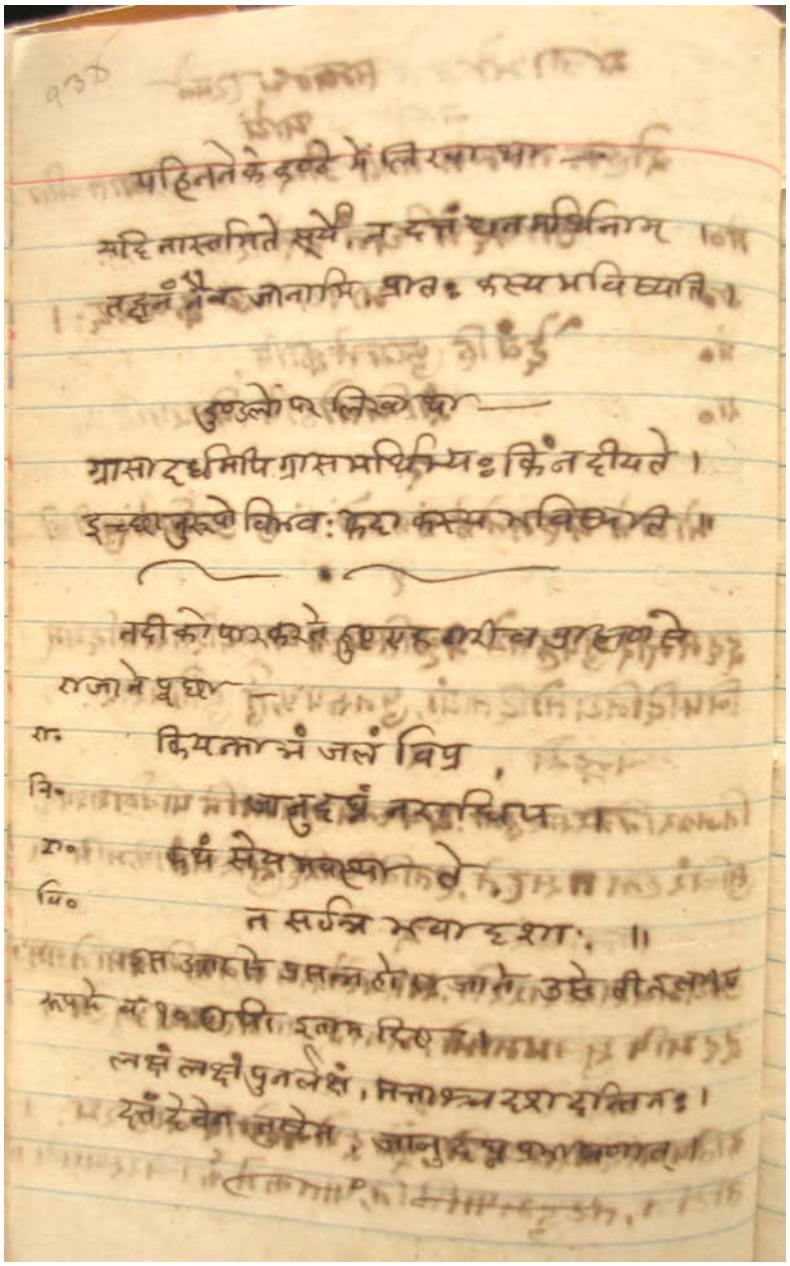

पहिनने के दुपट्टे में लिख रखा था —

यदि नास्तमिते सूर्ये, न दत्तं धनमर्थिनाम् ।
तद्धनं नैव जानामि, प्रातः कस्य भविष्यति ॥

कुण्डलों पर लिखा था —

ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते ।
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥

नदी को पार करते हुए एक गरीब ब्राह्मण से राजा ने पूछा —

रा॰ कियन्मात्रं जलं विप्र,
वि॰ आजानुदघ्नं नराधिप ।
रा॰ कथं सेयमवस्था ते,
वि॰ न सर्वत्र भवादृशाः ॥

बहुत आदर से प्रसन्न होकर जाते उसे बीस लाख रुपये सं १०७० मि. इनाम दिए ।

लक्षं लक्षं पुनर्लक्षं, मत्तश्च दश दन्तिनः ।
दत्तं देवेन तुष्टेन, जानुदघ्न प्रभाषणात् ॥

एक बार रात्रि में अचानक नींद खुल जाने से राजा ने देखा कि चन्द्र की चन्द्रिका से समय बड़ा सुहावना प्रतीत हो रहा है, राजा ने कल्पना से श्लोकार्ध बना डाला —

यदेतच्चन्द्रान्तर्जलदलवलीलां प्रकुरुते,
तदाचष्टे लोकः शशक इति नो मां प्रति तथा ।

संयोग से इसके पहिले ही एक विद्वान चोर राजमहल में घुस आया था, किन्तु राजा के जग जाने के कारण छिपा बैठा था, जब भोज ने दो तीन बार उसे दुहराया और उत्तरार्ध न बन सका - तो उस विद्वान चोर से चुप न रहा गया और तुरन्त उत्तरार्ध बोला —

अहं त्विन्दुं मन्ये त्वदरिविरहाक्रान्ततरुणी-
कटाक्षोल्कापातव्रणशतकलंकांकित तनुम् ॥

राजा उसे सुन बहुत प्रसन्न हुआ, रात को तो उसे एक कोठे में बन्द करा दिया - और प्रातः राज सभा में बुला कर करोड़ मोहरें व आठ हाथी इनाम में दिए —

यथा —

अमुष्मै चौराय प्रतिनियतमृत्युप्रतिभये,
प्रभुः प्रीतः प्रादादुपरितनपादद्वयकृते ।
सुवर्णानां कोटीर्दश दशनकोटिक्षतगिरीन्,
करीन्द्रानप्यष्टौ मदमुदितगुञ्जन्मधुलिहः ॥

एकबार भोज की सभा में एक ऐसा कुटुम्ब आया।
जिसमें कि सभी विद्वान थे —

बापो विद्वान, बाप पुत्रो पि विद्वान,
आई विदुषी, आई वधु अपि विदुषी।
काणी चेटी, साऽपि विदुषी बराकी,
राजन्मन्ये विज्ञ पुञ्जं कुटुम्बम्॥

यह देख राजा ने बाप को समस्या दी —

असारात् सारमुद्धरेत् —

इस पर उसने पूर्ति की —

दानं वित्ताद् ऋतं वाक्यः, कीर्तिधर्मौ तथायुषः।
परोपकरणं कायाद् असारात् सारमुद्धरेत्।

— ० —

यह सुन राजा ने पुत्र को समस्या दी —

हिमालयो नाम नगाधिराजः,
चकार मेना विरहातुराङ्गी।

इस पर उसने पूर्ति की,

तव प्रतापज्वलनाज्जगाल,
हिमालयो नाम नगाधिराजः।
चकार मेना विरहातुराङ्गी,
प्रवालशय्याशरणं शरीरम्॥

— ० —

फिर पंडित की स्त्री को राजा ने सत्कार दी —

कमण्डु पिया वउं खीरु ।

उसने पूर्ति की —

जइ मह रावण जाइयउ, दहमुह इक्कु सरीरु ।
जणणि वियम्भी चिन्तवइ, कवणु पियावउं खीरु ॥

फिर राजा ने पुत्र वधू को समस्या दी —

मइं कण्ठिइ विलुल्लइ काउ ।

उसने पूर्ति की —

कायावि विरहकरालिइं धइ उड्डाविउ वराउ ।
सहि अच्छभूउ दिट्ठु मइं कण्ठिइ विलुल्लइ काउ ॥

अर्थात्, हे सखि आश्चर्य है कि कलहान्तरिता नायिका ने अपने विरह का कुलपति कौआ तो मैंने ही उड़ा दिया, और यह नहीं सोचा कि इसके बाद किसके गले लगूंगी ।

इन बातों से प्रसन्न हो राजा ने सबको यथोचित इनामें दीं किन्तु राजा को उस समय पंडित की कन्या से कुछ पूछने की याद न रही तब वह रात्रि में द्वारपालों से आज्ञा लेकर महाराज के पास गई, महाराज पलंग लगाए धनीपा घूम रहे थे - उसने देखते ही कहा —

राजन्भोज, कुलप्रदीप, निखिलक्ष्मापालचूड़ामणे,
युक्तं संचरणं तवात्र भवने, यत्तेन राज्ञा वापि।
मा भूत्वद्दितावलोकनवश क्रीडा विलक्षः शशी,
मा भूच्चेयमरुन्धती भगवती दुःशीलताभाजनम्।

[उसके इस अभिप्राय भरे वचनों को सुन राजा ने वहीं पर प्रसन्न हो उससे विवाह कर लिया]

भोज की सुजनता के राजा भीम से यद्यपि सन्धि हो चुकी थी, किन्तु फिर प्रार्थ एक बार लिख भेजा —

हेलानिद्दलियगइंद कुम्भपयडियपयावपसरस्स।
सिंहस्स मएण समं, न विग्गहो नेय सन्धाणं॥

भोज की इस गर्वोक्ति को पढ़ कर राजा भीम ने भी जैन विद्वान गोविन्दाचार्य से इसका उत्तर लिखा दिया —

अन्धयसुयाण कालो पुहवी भीमो य निम्मिओ विहिणा।
जेण सयं पि न गणिअं, का गणना तुज्झ इक्कस्स॥

अर्थात् — अन्धे राजा के सौ पुत्रों (कौरवों) को अकेले भीम ने ही नहीं गिना, तो तेरी क्या गिनती करे — आचार्य — तुझ को तो यों ही मार गिराऊँ॥ राजा भोज उत्तर से क्षुब्ध हो गया।

एक बार एक दरिद्र पंडित ने राजा से कहा —

अम्बा तुष्यति न मया, न स्नुषया सापि नाम्बया न मया।
अहमपि न तया न तया, वद राजन कस्य दोषोऽयम् ॥

राजा ने श्लोक सुन कर उसकी गरीबी समझली और उसे इतना धन दिया कि आगे उसके घरों कलह की गुंजायश ही नहीं रही।

— o —

शीतकाल की रात्रि के समय घूमते हुए राजा ने एक दरिद्री के वचन सुने कि —

शीतेनाध्युषितस्य माघजलवच्चिन्तार्णवे मज्जतः
शान्ताग्नेः स्फुटिताधरस्य धमतः क्षुत्क्षामकुक्षेर्मम।
निद्रा क्वाप्यवमानितेव दयिता संत्यज्य दूरं गता,
सत्पात्रप्रतिपादितेव कमला नो हीयते शर्वरी ॥

राजा वचन सुन उस समय तो चुपचाप लौट गए और प्रातःकाल उसे बुलाकर पूछा कि तुमने रात कैसे काटी? उसने कहा —

रात्रौ जानुर्दिवा भानुः कृशानुः सन्ध्ययोर्द्वयोः।
एवं शीतं मया नीतं, जानुभानुकृशानुभिः।

राजा ने उस पुरुष को प्रसन्न हो तीन लाख मोहरें इनाम दीं।

एक समय घूमते हुए मैं हमी हस्ति पृथ्वी पाते

नी जली वले हुए [illegible] पर जो पड़ी

उसे देख [illegible] जाने कहा —

निम्न उपर [illegible] आत्मा [illegible] पीते हि जाए हि ।

यह सुन उसने जवाब दिया —

सुलभत्या विहुन परो [illegible] ते हि नि न किंचि ।

इह मौजाते कि कहा —

पर पत्पणा [illegible] मा जणाति जणे सुरविंदु आं ।

पर हुन [illegible] जीव [illegible]

मा पुहवि मा [illegible] जो सु [illegible] जे हि ।

[illegible] हुसन [illegible] जाते [illegible]

[illegible] ([illegible] दिया ।)

—— o ——

हे [illegible] लिख [illegible] के भोजन [illegible]

[illegible] सुनकर अपना [illegible] इस [illegible]

निर्मिता नकुली, [illegible] तीमा पढी,

[illegible] न लुब्धिल पुढी भूमी [illegible] कदी ।

तुच्छि [illegible] धरी [illegible] लेना [illegible] ।

श्रीमद् [illegible] ममाप तदीय ॥

इत पाछी जाने [illegible] हजोर मौ हुर प्रदान [illegible]

—— o ——

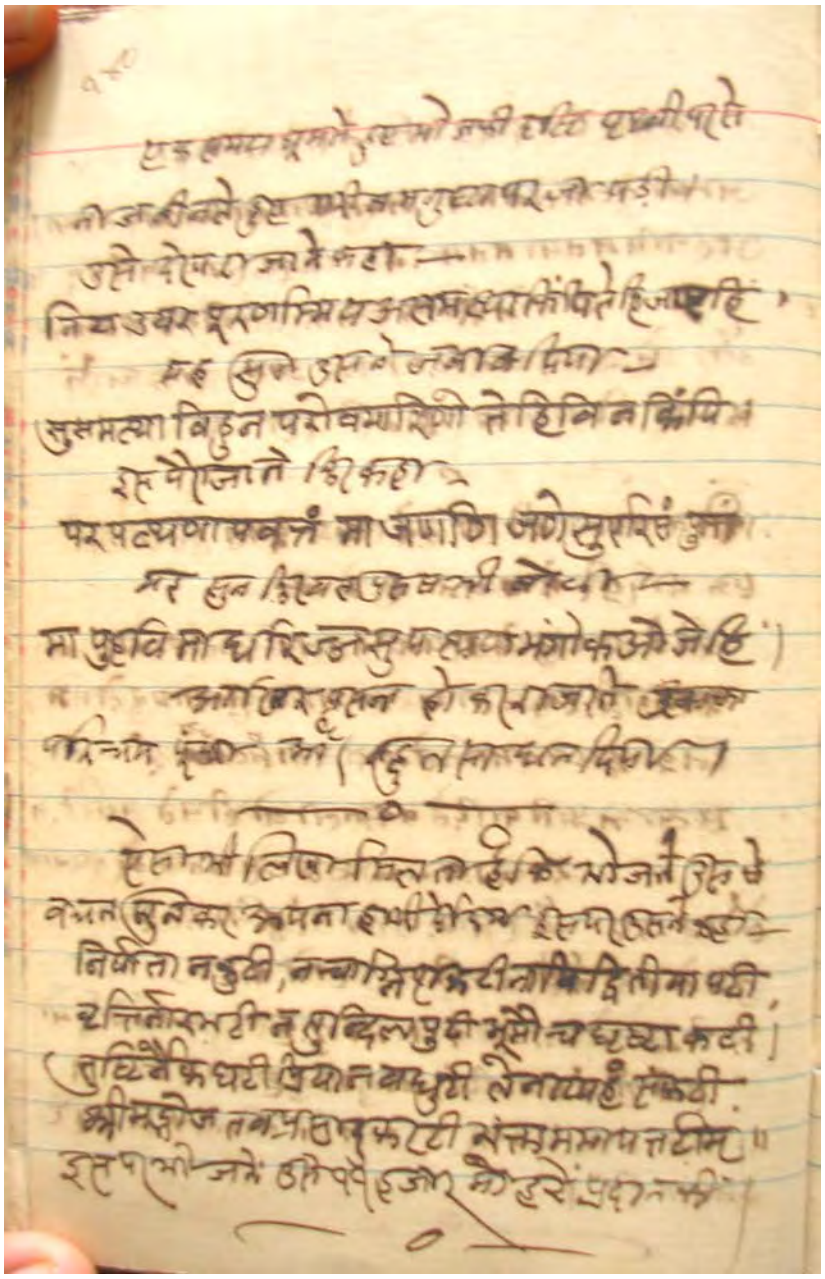

शिकार खेलते हुए राजा भोज ने धनपाल नामक
जैन विद्वान् से उस समय के हृदयवर्णन को कहा —
यह सुन वह बोला —

रसातलं यातु यदत्र पौरुषं
कुनीतिरेषा शरणो ह्यदोषवान् ।
निहन्यते यद्बलिनापि दुर्बलो —
हहा महाकष्टमराजकं जगत् ॥

उसे
राजा को बहुत क्रोधित देख फिर कहा —
वैरिणोऽपि हि मुच्यन्ते प्राणान्ते तृणभक्षणात् ।
तृणाहाराः सदैवैते हन्यन्ते पशवः कथम् ॥

धनपाल की इस नई उक्ति को सुन
राजा भोज ने उसी दिन से शिकार खेलना छोड़ दिया।

इसके बाद जब वे लोग लौट रहे थे, तो रास्ते में
यज्ञार्थ बंधे और मिमियाते हुए बकरे को देख कर
राजा भोज ने इसका कारण पूछा तो उसने कहा —
नाहं स्वर्गफलोपभोगतृषितो नाभ्यर्थितस्त्वं मया,
सन्तुष्टस्तृणभक्षणेन सततं साधो न युक्तं तव
स्वर्गं यान्ति यदि त्वया विनिहता यज्ञे ध्रुवं प्राणिनो —
यज्ञं किं न करोषि मातृपितृभिः पुत्रैस्तथा बान्धवैः ॥

यह सुनकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ, इसपर
उसने कि कहा —
यूपं कृत्वा पशून् हत्वा, कृत्वा रुधिरकर्दमम् ।
यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ॥
क्योंकि यथार्थ में तो —
सत्यं यूपो तपो ह्यग्निः कर्माणि समिधो मम ।
अहिंसा माहुतिं दद्यादेवं यज्ञः सतां मतः ॥
यह सुनकर राजा ने उसी समय यज्ञ बन्द
करदिया —

५

सामन्ति पर —

१
अमेध्य मश्नाति विवेकशून्या स्वनन्दनं कामयते तिरश्च ।
सुराग्रभक्षो विनिहन्ति जन्तून् सा किं दाते केन गुणेन (जन्तु) ।
२
पयः प्रदानसामर्थ्यात् वन्द्या चेन्माहिषी न किम् ।
विशेषो दृश्यते नास्याः माहिषी तेन नागमिः ॥ ५

ज्ञानोदय विचार —

१

मृतकस्यापि मृत्युं यदि पश्येदयं जनः ।
आह्लादोऽपि न रोच्येत किंतु लाभाय कल्पते ॥

२

उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं किमद्य सुकृतं कृतम् ।
आयुषः खण्डमादाय रविरस्तं प्रयास्यति ॥

३

लोकः पृच्छति मे वार्तां, शरीरे कुशलं तव ।
कुतः कुशलमस्माकं, आयुर्याति दिने दिने ॥

४

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत, पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् ।
मृत्युर्नहि प्रतीक्षेत कृतं वास्य न वा कृतम् ॥

५

मृतो मृत्युर्जरा जीर्णा विपन्नाः किं विपत्तयः ।
व्याधयो बाधिताः किं नु ~~[illegible]~~ हृष्यन्ति यदमी जनाः ।

— ० —

एकबार राजा भोजने [illegible] चार वस्तुएं भिजवाने को कहा — वे ये थे —

1 वह वस्तु जो इसलोक में हो पर परलोक में न हो,
2 वह वस्तु जो परलोक में हो, पर यहां नहीं हो।
3 वह वस्तु जो दोनों लोक में हो।
4 वह वस्तु जो दोनों लोकों में भी नहीं हो।

[illegible] ने भी एक जैन विद्वान से चारों को इस प्रकार भिजवाये —

1 वेश्या, जो इसलोक में सब सुख है, परलोक में कुछ भी नहीं।
2 तपस्वी को यहां कुछ भी सुख नहीं, परलोक में स्वर्ग का राज्य मिलता है।
3 दानी को यहां भी व वहां भी सुख है।
4 जुआरी को न यहां, न वहां सुख है।

एक बार राजा ने घूमते समय छांछ बेचनेवाली के सिर से घड़े लुढ़क जाने पर लोगों को हँसते को सुन कर कि लोग क्यों हँसी का कारण कहें उसने कहा —

हत्वा नृपं पतितमवेक्ष्य भुजङ्गदष्टं,
देशान्तरे विधिवशाद्गणिकास्मि जाता।
पुत्रं भुजङ्गमविधानगतां चितां प्रविष्टा,
शोचामि गोपगृहिणी कथमद्य तक्रम्॥

— ० —

खादन्न गच्छामि हसन्न जल्पे,
गतं न शोचामि कृतं न मन्ये।
द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि राजन्,
किं कारणं भोज भवामि मूर्खः॥

और एक बार महाराज भोज के विद्वान को अपने साथ लिए
घूमते हुए कालिदास के नीचा दिखाने की इरादा
से अनुष्टुप्‌ छन्द कहा —
एकलेकारिपोः शिरः प्रतिजव कृष्णैस्तौ वाजिनं ।
धृत्वा चापधनुः प्रयाति ततत संग्रामभूमावपि ।
भूतं चौर्यमधर्मिणं च पापं जानाति नाथं हरः
अभी कुछ विद्वानों ने तीन पद कहे
कह पाये कि कालिदास ने तुरंत उसी [illegible] —
दानानुयततां विलोक्य विधिनाश्रौ चार्थिकार्थिकृतः ॥
पर भोजराज जो गोइंत पड़ा
और वह पंडित लज्जित हो गया ।

किसी नगर के विद्वान असमर्थ होने पर भी
किसी के यहाँ मांगने को नहीं जाता था, यह देख कर उसकी
स्त्री ने उसे कालिदास की भोज के पास भेजा —
भोज ने कहा गान जो तब समझ के प्रश्न —

भुक्त आगम्यते विप्र, प्र.
कुलालस्य दारा तोऽस्य गृहम् । उ.
शिवस्य चरणौ स्थविर, प्र.
किं पश्यसि शिवो मृत: । उ.

यह सुनके भोज को बहुत आश्चर्य हुआ
और उसने इसका कारण पूछा — उसने कहा —

श्लोकं दातव्यो नृपो गिरिजया पार्श्वं हस्ते हतं
देवेभ्यं नृपतनये भाव भावे समुन्मीलिते ।
गाढं कामं, सम्यक् शान्ति कला शेषस्य पृथ्वी तले
तन्नज्ञात्वा समीश्वर त्वमम मन्वो मौन निक्षापताम् ५

अकलंक की रीत अति की ठीक एवं जाने पाले
पिड़ दिपक को आज्ञा दी कि इसे एक मोहर दे दो जिससे
इसके बाल-बच्चे सुखी रहें। किन्तु वह दुष्ट

१४२४

५. कोटी लाजी किलुओं में मैंने देखे आना-
ब्राह्मण उनकी उत्कंठा निमंत्रण और मैंने देखा ला
उनके बीनों से कुछ मन्त्र का मुख सुनाने लगा —
लिए मैंने केंद्र के सामने अपनी कोतलगाड़ी
इगमान। मट देखि राजा भोजन ने इनके कारण
पैर - तब उनसे उन्होंने किया, महाराज मैं
उनसे पूछा था, कि क्या यह गान पवित्र है? तो उन्होंने
उसे कान में कहा है —

मन्त्रो मे माखिधारा: इति पुरो देवा मृतात्मा ह्र:,
तस्मात्तद्गितो स्वामि विद्यावान् बंधव धर्म लक्षण ।।
दत्वा: से गनलिता, कुमो विना लिता, अनुक्रियागुरुं,
वपूपायामि माम् सिम्भनविर्किं पठन्ना किलेज्जोऽ ।

६. राजा इन्हें ऊके बड़े तजी प्रसन्न हुए और
उन्हें उस मन्त्र को सुनाने के पंडित को
बख्शीश दिया।

बोले न्यायालय में विचार होते समय राजा भोज से उनका कथन —

भट्टिर्नष्टो, भारविश्चापि नष्टो,
भिक्षुर्नष्टो भीमसेनश्च नष्टः ।
भुक्कुण्डोऽहं भूपतिस्त्वं च राजन
भाम्भापंक्तौ वान्तकः संप्रविष्टः ॥

सो जब इसकी उक्ति सुनके प्रसन्न होके राजा ने उसका दण्ड माफ कर दिया।

— o —

राजाने एक बार ऐसे ४ पंडित रखे जो क्रमशः नये पद्य को १-२-३-४ बार सुनकर कंठस्थ कर लेते थे. इसके कोई भी पंडित नया प्रत्येक काव्य लाता, तो इन्हें वे पंडित उसे सुना देते थे, जिससे उस बेचारे को कुछ भी इनाम नहीं मिल पाती थी, तब एक विद्वान निम्न श्लोक बना के लेगया —

स्वस्ति श्री भोजराज त्रिभुवन विदितो धार्मिकस्ते पितासीत् ।
पित्रा ते वै गृहीता नवनवति मिता रत्नकोट्यो मदीयाः ।
ता मे देहीति राजन, सकल बुधजनै ज्ञायते सत्यमेतत्,
नो वा जानन्ति ते तन्मम कृतिमथवा देहि लक्षं ततो मे ।

यह सुनके पंडित आपसमें एक दूसरे को देखने लगे। और चुप हो गए। इतने में उस पंडित को वह नये श्लोक का समझा गया, और उसे पुरस्कार में भी मिला।

एक बार रात्रिमें आंख खुल जाने के कारण भोज को अपने ऐश्वर्य का ख्याल आ गया, इससे उनके मुख से निकला —

चेतोहरा: युवतय: सुहृदोऽनुकूला:,
सद्बान्धवा: प्रणयगर्भगिरश्च भृत्या:।
गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरंगा: —

अभी राजा इतना ही कह पाया था कि कोने में छिपे हुए चोर के मुख से निकला —

सम्मीलिते नयनयोर्नहि किञ्चिदस्ति॥

राजा ने उस चोर की उक्ति सुनकर उसका अपराध क्षमा कर दिया और उचित इनाम देकर उसे बिदा किया।

'वस्तुस्वभावः'

न रम्यं नारम्यं प्रकृतिगुणतो वस्तु किमपि,
प्रियत्वं यत्र स्यादितरदपि तद्ग्राहकवशात्।
रथाङ्गाह्वानानां भवति विधुरङ्गारशकटी,
पटीराम्भः कुम्भः स भवति चकोरीनयनयोः

——०——

दान देने की महत्ता —

१

हरि ध्यान संतोष, शान्त; सन्तोषधारिणा,
दीनाश्च भगजन्मा तु केनाम्बुपश्यम्यतु ॥

२

व्रजत व्रजत प्राणा, अर्थिनि व्यर्थतां गते ।
पश्चादपि हि गन्तव्यं क्व सार्थः पुनरीदृशः ॥

३

न भिक्षा दुर्भिक्षे, पतति दुरवस्था; कथमहं,
जानन्ते कर्णोऽपि [illegible] कारयति कः,
अद्यापि [illegible] ,
क्व यामः किं कुर्मो, गहना [illegible] विधि,

४

सुदाम: पथिको यदी स्यादन्ते,
पञ्चन कुतोऽभ्यागत: ।
तत्किं गेहिनि किञ्चिदस्ति सदने,
भुङ्क्ते क्षुधातुर: ।
वाचास्ती बधिर नाम नास्ति च पुनः,
त्रीकं पिलै मा ब्रते ?,
स्थूल स्थूल विलोचनो जल जतौ —
बाष्पाम्भांसि विमुञ्चति

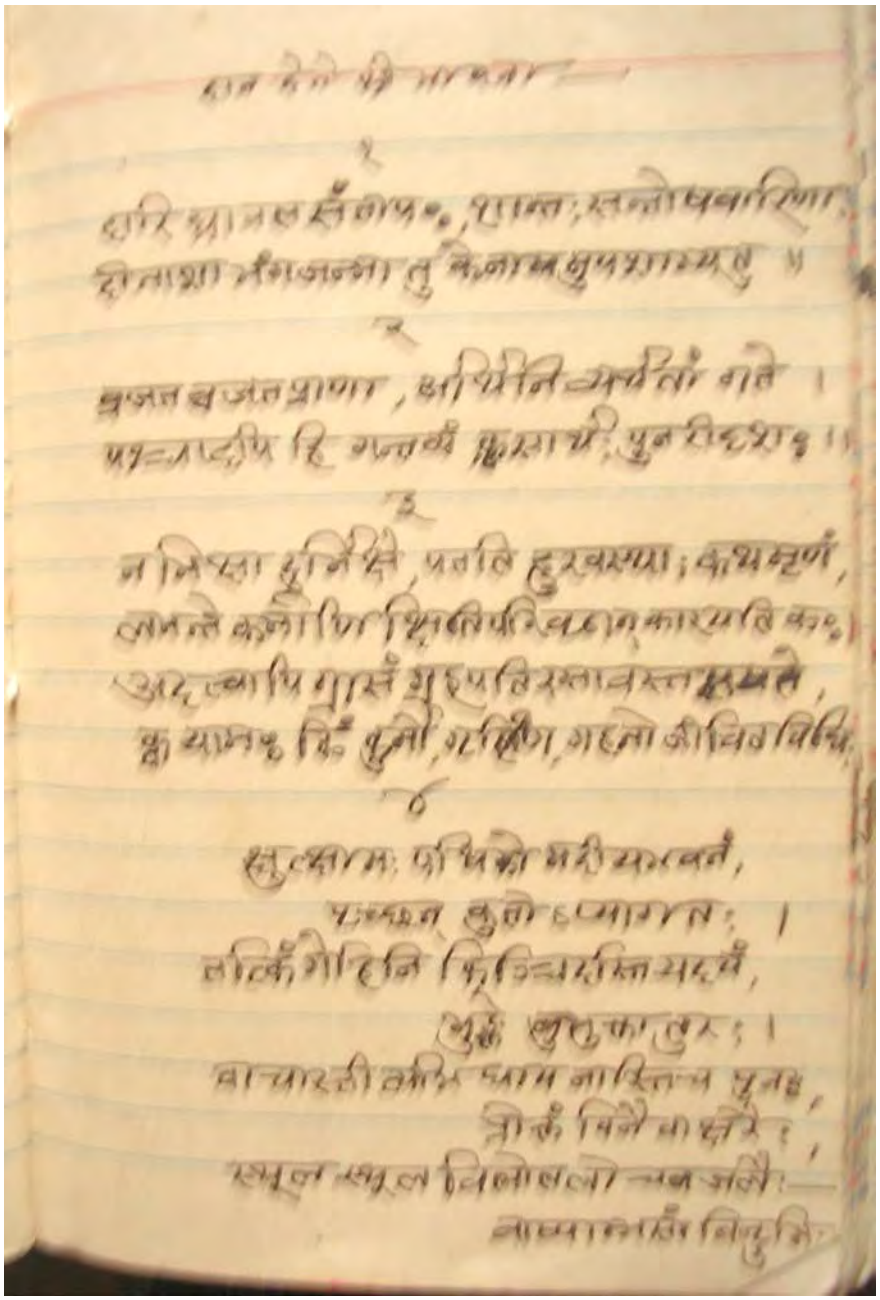

१

कुमुद वन मपश्रि श्रीमदम्भोज खण्डं,
त्यजति मद मुलूकः, प्रीतिमांश्चक्रवाकः।।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं,
हतविधिललितानां ही विचित्रो विपाकः।

साहित्ये सुकुमारवस्तुनि दृढन्यायग्रहग्रन्थिले,
तर्के वा मयि संविधातरि समं लीलायते भारती ।
शय्या वास्तु मृदूत्तरच्छदवती दर्भाङ्कुरैरास्तृता,
भूमिर्वा हृदयंगमो यदि पतिस्तुल्या रतिर्योषिताम् ॥

एक नमाज़ पढ़नेवाले मौलवी और एक कामातुर वैष्णव की बातचीत —

१

रेरे किं शृहिल्लासि नष्टनयने किं कोटपालप्रिया,
किं पश्यन्त्यपि चान्धलोपपतिगा त्वं द्विकुरी कस्य रे।
हस्त्यारूढपिता निपीतमदिरा, किं क्रीतलोकस्त्वया,
किं स्वस्त्राणसुता कुलग्नहृदया पादोपिती यन्मयि।

२ उत्तर —

भूतग्रस्तमलीनशून्यहृदयो नित्यं पठस्यत्र किं,
किं ध्यानं प्रकरोषि निष्फलतरं ज्ञातो भवद्द्दियितः।
तत्त्यक्त्वेदमपप्रयाहि जठरे, लग्नो लमो नेपूवरे,
पश्येद्दङ्मम मानसं कमतरि ज्ञातो नयस्त्वं मया ॥

नार्यः — १

संमोहयन्ति, मदयन्ति विडम्बयन्ति,
निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ।
एताः प्रविश्यसदयं हृदयं नराणां,
किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ॥

२

द्रौपद्या वचनेन कौरवशतं निर्मूलमुन्मीलितं,
सुग्रीवस्य वधाय मोहमतुलं वाली हतस्तारया ।
सीतासक्तमना स्त्रिलोकविजयी प्राप्तो वधं रावणः
प्रायः स्त्री वचन प्रपञ्चनिरतः सर्वं क्षयं यास्यति ॥

३

चण्डी दुर्विनया स्वयं कलहिनी, तृष्णातुरा तन्द्रिणी,
निद्रालुः प्रथमाशिनी कपटिनी, ह्रीवर्जिता तस्करी,
देहल्यामुपवेशिनी विक्रयिनी दन्तैः खटत्कारिणी
निःशौचांघ्रि विकर्तिनी परगृहस्थाणुश्च दुर्मोहिनी,

लोकव्यवहारज्ञो भवेत्

१

काव्यं करोतु परिजल्पतु संस्कृतं वा,
सर्वाः कलाः समधिगच्छतु वाच्यमानाः,
लोकस्थितिं यदि न वेत्ति यथानुरूपं,
सर्वस्य मूर्खनिकरस्य स चक्रवर्ती ॥

धर्मतरोः फलम्

१

सुकुलजन्म, विभूतिरनेकधा,
प्रियसमागमसौख्यपरम्परा ।
नृपकुले गुरुता विमलं यशो,
भवति धर्मतरोः फलमीदृशम् ॥

२

सविनयास्तनयाः दयिता हिता,
नयभवा विभवो नुगुणाः गुणाः ।
वपुरनाधि समाधिरतिर्नृणाम्,
शुभतरोः प्रथमेऽङ्कुरका इमे ॥

क्रोधः —

क्रोधः परितापकरः, सर्वस्योद्वेगकारकः क्रोधः।
वैरानुषङ्गजनकः, क्रोधः क्रोधः सुगतिहन्ता॥

मानः —

विमुञ्च मानं मनसापि दुष्टं
मानेन लंकाधिपतिर्विनष्टः।
परासुरासीज्ज सुयोधनः किं,
दुःखं स्थितो बाहुबलिर्न वर्षम्।

माया —

तिर्यक्षु क्षामकुक्षिर्भवति कुरुते प्राजनादि प्रणुन्नो
यो वित्तं भूरि कृत्वं भजति नरगतो पंगुतां कुब्जतां वा।
द्वेष्यः प्रेष्यो दरिद्रो विगतसुखलवो निष्फलारम्भकर्ता।
भूयो भूयः क्लिश्यमानः भ्रमति भवने मायादोषेण देही।
विधाय माया विविधैरुपायैः,
परस्य ये वञ्चनमाचरन्ति।
ते वञ्चयन्ते त्रिदिवापवर्ग-
सुखान्महामोहसखाः स्वमेव॥

लोभः —

यद्दुर्गामटवीमटन्ति विकटं क्रामन्ति देशान्तरं,
गाहन्ते गहनं समुद्रमथनं क्लेशं कृषिं कुर्वते।
सेवन्ते कृपणं पतिं गजघटा संघट्ट दुःसञ्चरं,
सर्पन्ति प्रधनं धनान्धितधियस्तल्लोभविस्फूर्जितम्

१

मुखं लोलल्लोलं विगतदशनास्तेऽपि दशनाः,
न विस्पष्टा दृष्टिः जितिततरः केशनिकरः ।
गतप्राणः पाणिर्वपुरुपचितास्थिस्थपुटितं,
न मृग्यं वैराग्यं तदपि कपिलोल्लेखेन मनसा ।

१

सद्धर्मबीजवपनानघकौशलस्य,
यल्लोकबान्धव तवापि खिलान्यभूवन्,
तन्नाद्भुतं खगकुलेष्विह तामसेषु,
सूर्यांशवो मधुकरीचरणावदाताः ॥

२

सुनिश्चितं नः परतन्त्रयुक्तिषु,
स्फुरन्ति याः काश्चन सूक्तसम्पदः ।
तवैव ताः पूर्वमहार्णवोत्थिताः,
जगत्प्रमाणं जिनवाक्यविप्रुषः ॥

रजनी जगाम —

१

सुकोमले चन्द्रसमानवक्त्रे,
प्रिये वदन्ती मधुरां च वाणीम् ।
सम्यग् जिनेन्द्रस्मरणाय शीघ्रं,
मुत्तिष्ठ जैनी रजनी जगाम ।

२

कुर्वन्ति सत्साधुगणाः स्वकृत्यं,
पठन्ति शिष्याः जिनभाषितानि ।
ध्यायन्ति शिष्याः परमेष्ठिमन्त्रं,
मा शेष्व बाले, रजनी जगाम ॥

३

शुकाः सुपुण्यं जिनराजनाम,
पठन्ति सत्कांचनपंजरस्थाः ।
भद्रे तथास्पर्धति सारिकादि,
त्यज प्रमादं रजनी जगाम ॥

४

एते पठन्ति कृतिनो व्रतजैनरक्षाः,
भेते पठन्ति जिननिर्मलनामपंक्तीः ।
एते पठन्ति जिनवाश्रवतीर्थमाला,
उत्थीयतां सुनयने रजनी जगाम ॥

मार्गे मार्गे, देवयोत्कर करमा,
यान्त्यायान्ति कद्रुया श्वाद्रु मुख्याः ॥
चैत्ये चैत्ये त्वेकुयते चत्वरचोक्षः,
अन्यो नव्यो मुञ्च निद्रां महेले ॥

६

एते व्रजन्ति हरिणास्तरणमपहाणाय,
चूर्णि विधातुमथ यान्ति हि पक्षिणो पि,
मार्गस्तथापि सुवहः किल पति तलक्ष्य,
शय्यां विमुञ्च महिले, रजनी जगाम ॥

दुष्टस्त्रीणां प्रबोधनप्रकार:

१

रे रे प्रिये पक्वपटोलनेत्रे
लम्बस्तने, निर्जित काकनादे ।
यत्पाद निक्षेपगलद्गृहश्री –
रुत्तिष्ठ दुष्टे, दलनाय गच्छ ।

२

रे घोरनिद्रे, कलहप्रसक्ते,
रे प्रेतरूपे, नितमां कुरूपे ।
रे दुर्भगे, भाग्यविवर्जिते रे,
उत्तिष्ठ दुष्टे सलिलाय गच्छ ॥

३

क्रूरस्वभावे, करुणाविहीने,
कठोरवाक्ये, कृपणा धवेऽपि ।
अलक्ष्मिके, क्रोधमुखी, विमूढे,
कुरुष्वं गोमय मानय-दाके ॥

दूरतः परिवर्जयेत्

१

कुदेशांच कुमित्रांच, कौषधंच कुसौहृदम् ।
कुभार्यांच्च कुराज्यंच, दूरतः परिवर्जयेत् ।।

२

खरं, श्वानं, गजं मत्तं, रण्डांच बहुभाषिणीम्
कुराजानं कुमित्रांच. दूरतः परिवर्जयेत् ।।

३

वैद्यं पानरतं नटं कुपठितं, मूर्खं परिव्राजकं,
योधं कापुरुषं, विटं विवयसं, स्वाध्याय हीनं द्विजम्
राज्यं बालनरेन्द्रमन्त्रिरहितं मित्रं छलान्वेषिणं,
भार्यां यौवनगर्वितां पररतां नेच्छन्ति ये पंडिताः ।

१

तद् भोजनं यद् गुरुदत्त शेषं,
सा प्राज्ञता यान करोति पापम।
तत् सौहृदं यत् क्रियते परोक्षे,
दम्भै विना यः क्रियते सधर्मः ।।

१

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो येचाम्बुपत्राशना —
स्तेपि स्त्रीमुखपंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहंगताः।
आहारं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवाः,
तेषामिन्द्रियनिग्रहः कथमहो दम्भः समालोक्यताम्

२

सिंहो बली, द्विरदशूकरमांसभोजी,
संवत्सरेण रतिमेति किलैकवारम्।
पारावतः खरशिलाकणभोजनोपि
कामीभवत्यनुदिनं वद को हेतुः।

३

वेश्या रागवती सदा तदनुगा, षड्भीरसैर्भोजनं,
शुभ्रं धाम मनोहरं वपुरहो नव्योवयः संगमः।
कालोऽयं जलदागमस्तदपि यः कामंजिगायादरात्
तं वंदे युवतिप्रबोधकुशलं श्रीस्थूलभद्रं मुनिम्।

१

पढ़ना लिखना चातुरी, यह तो बात सहल ।
काम दहन मन वश करन, गगन चढ़न मुश्किल ॥

२

कामी से कुत्ता भी बुरा, जो टुकर मांडे रगड़ ।
सेवक कुत्तों से बुरा, जो गुरु दिल बेगार ॥

३

२०८

महापुरुषों के वचन

१- स्त्री संसार की शोभा है, इस के बिना प्रत्येक वस्तु सुनसान व कुछ नहीं।

२- स्त्री प्रेम का वह जीव है, जिसकी स्वभाव में पवित्रता, निगाहों में स्नेह, आवाज में मिठास और व्यवहार में नेकी हो।

3. सच्ची स्त्री वह है, जिसके स्वभाव में जादू हो।

४. संसार के महापुरुषों ने स्त्री का ही दूध पिया था।

५- ऐ भारत देवी, तेरे भूषण सोना चांदी के नहीं, लज्जा है
- तेरा सौन्दर्य रूप रंग नहीं, तेरी सच्ची शीलता है।
- तेरा लिबास रेशम व मखमल से नहीं, तेरी सुघड़ता है।
- यदि तू निर्धन है, तो अपनी निर्धनता पर शोक व दुःख के अश्रु न बहा, संसार में बहुत सी स्त्रियां तुझसे भी निर्धन हैं।
- यदि ईश्वर ने तुझे सौन्दर्य व जादू प्रदान किया है तो घमंड न कर, संसार में बहुत स्त्रियां तुझसे भी बहुत सुन्दर हैं।
- यदि तेरा चेहरा आकर्षक नहीं, तो ग़म न कर। संसार में तुझ से भी कुरूप स्त्रियां हैं।

– हंसमुखी स्त्री शक्की पतियों को भी निर्दोष
चित्त बना देती हैं।

– तेरा संसार तेरा पति है, अपने आप को
उससे बाहर न ले जा।

– अपने पति के सिवा किसी तरफ न देख, नहीं तो
तो पति का दिल भी तुझसे लापरवाह होगा।

– अपना दिल अपने पति को दे,
उसका दिल स्वयं तेरा हो जायगा।

(धार्मिक मासिक पत्रिका से)

शंकराचार्य और मंडन मिश्र का संवाद

—०—

शंकर ने दासियों से मंडन मिश्र का पता पूछा.

उत्तर मिला —

1- स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः॥

2- फलप्रदं कर्म फलप्रदोऽजः कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः॥

3- जगद्ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं स्यात् कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः॥

—०—

कुतो मुण्ड्यागलान्मुण्डी पन्थास्ते पृच्छ्यते मया।
किमाह पन्थास्त्वन्माता मुण्डेत्याह तथैव हि॥

अर्थात् —

मंडन - कुतो मुण्डी,
शंकर - आगलान्मुण्डी,
मंडन - पन्थास्ते पृच्छ्यते मया।
शंकर - किमाह पन्थाः,
मंडन - त्वन्माता मुण्डेत्याह,
शंकर - तथैव हि॥

तब ही शंकराचार्य बोले —

पन्थानं त्वमपृच्छस्त्वां पन्थाः प्रत्याह मण्डन।
त्वन्मातेत्यत्र शब्दोऽयं न मां ब्रूयादपृच्छकम्॥

इस पर मंडन बोले —

मंडन - अहो पीता किमु सुरा,
शंकर, नैव श्वेता यतः स्मर।
मंडन – किं त्वं जानासि तद्वर्णम्,
शंकर - अहं वर्णं भवान् रसम्॥

— o —

इस पर मंडन ने क्रुद्ध हो कर कहा —
“ मत्तो जातः कलंजाशी, विपरीतानि भाषसे।
इस पर शंकर ने हंस कर कहा —
सत्यं ब्रवीति पितृवत् त्वत्तो जातः कलंजभुक् ”

— o —

मंडन ने कहा —
कन्थां वहसि दुर्बुद्धे, तव पित्रापि दुर्भराम्।
शिखायज्ञोपवीताभ्यां कस्ते भारो भविष्यति॥
शंकर बोले —
कन्थां वहामि दुर्बुद्धे, तव पित्रापि दुर्भराम्।
शिखायज्ञोपवीताभ्यां श्रुतेर्भारो भविष्यति॥

मंडन —

त्यक्त्वा पाणिगृहीतीं स्वां अशक्तः परिरक्षणे ।
शिष्यपुस्तकभारेच्छोर्व्याख्याता ब्रह्मनिष्ठता ॥

शंकर —

गुरुशुश्रूषणालस्यात् समावर्त्य गुरोः कुलात् ।
स्त्रियः शुश्रूषमाणस्य व्याख्याता कर्मनिष्ठता ॥

मंडन —

स्थितोऽसि योषितां गर्भे, ताभिरेव विवर्धितः ।
अहो कृतघ्नता मूर्ख, कथं ता एव निन्दसि ॥

शंकर —

यासां स्तन्यं त्वया पीतं, यासां जातोऽसि योनितः ।
तासु मूर्खतम स्त्रीषु पशुवद्रमसे कथम् ॥

मंडन —

वीरहत्यामवाप्नोति, वह्नीनुद्वास्य यत्नतः ।

शंकर —

आत्महत्यामवाप्नोति त्वमविदित्वा परं पदम् ॥

मंडन —

दौवारिकान् वञ्चयित्वा कथं स्तेनवदागतः ।

शंकर —

भिक्षुभ्योऽन्नमदत्त्वा त्वं स्तेनवद्भोक्ष्यसे कथम्

— ० —

मंडन—

अमङ्गलेन संभाष्य, अहं मूर्खेण सम्प्रति।

शांकर—

अहो प्रकटितं ज्ञानं यतिभंगेन भाषिणा॥

मंडन—

यतिभंगे प्रवृत्तस्य यतिभङ्गो न दोषभाक्॥

शांकर—

यतिभंगेऽप्युक्तास्ते, पञ्चम्यन्तं समस्यताम्॥

मंडन—

क्व ब्रह्म क्व च दुर्मेधाः, क्व संन्यासः क्व वा कलिः।
स्वाद्वन्नभक्षणकामेन, वेषोऽयं योगिनां धृतः॥

शांकर—

क्व स्वर्गः क्व दुराचारः क्वाग्निहोत्रं क्व वा कलिः।
मन्ये मैथुन कामेन वेषोऽयं योगिनां धृतः॥

—o—

१२०

(९)

सर्वस्य द्वे सुमतिकुमती, सम्पदापत्ति हेतू,
वृद्धो यूना, सह परिचयात् त्यज्यते कामिनीभिः।
एको गोत्रे सम्भवति पुमान् यः कुटुम्बं बिभर्ति,
स्त्री पुंवच्च प्रभवति यदा, तद्धि गेहं विनष्टम्।

अर्थात् —

राक्षस – 'एको गोत्रे',
कालिदास – सुमतिकुमती सम्पदापत्ति हेतू।
राक्षस 'वृद्धो यूना'
कालि० – सह परिचयात् त्यज्यते कामिनीभिः"
राक्षस – 'एको गोत्रे'
कालि० – 'सम्भवति पुमान् यः कुटुम्बं बिभर्ति,
राक्षस – "स्त्री पुंवच्च"
कालि० – प्रभवति यदा तद्धि गेहं विनष्टम्"

राक्षस पाणिनीय सूत्रों को समस्या के रूप में उपस्थित करता है, किन्तु कालिदास उनके अर्थ बदलकर नवीन चमत्कार उपस्थित कर देता है।

—o—

(२)

नमस्कार – मोअक्षरा —

"अणोरणीयान् महतो महीयान् "

इति कौलिक सन्देश —

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं,

नित्य गृहीत्वा शपथं करोमि ।

योग वियोगे द्विततोऽङ्गतो यान्

अणोरणीयान् महतो महीयान् ।

एक बार राजा विक्रमादित्य को प्यास लगी उसने सेवक से पानी मांगा —

स्वच्छं सज्जनचित्तवल्लघुतरं, दीनार्तिवच्छीतलं,
पुत्रालिंगनवत्तथैव मधुरं, तद्बाल्यसंजल्पवत् ।
एलोशीरलवङ्गचन्दनलसत्कर्पूरकस्तूरिका,
जातीपाटलिकेतकैः सुरभितं पानीयमानीयताम् ॥

सेवक बड़ा विद्वान् कवि था. उसने हुलक उत्तर दिया —

वक्त्राम्भोजे सरस्वत्यधिवसति सदा शोण एवाधरस्ते,
बाहुः काकुत्स्थवीर्यस्मृतिकरणपटुर्दक्षिणस्ते समुद्रः ।
वाहिन्यः पार्श्वमेताः कथमपि भवतो नैव मुञ्चन्त्यभीक्ष्णम्.
स्वच्छे चित्ते कुतोऽभूत्कथमपि नरपते तेऽम्बुपानाभि
लाषः ॥

— ० —

(४)

एक निर्धन कवि लक्ष्मी से उपालम्भ करता है —

निद्राति, स्नाति, भुङ्क्ते, चलति कचभरं,
शोधयत्यन्तरास्ते ।
दीव्यत्यक्षैर्न चायं गदितुमवसरो,
भूय आयाहि याहि ।
इत्युद्दण्डैः प्रभूणामसकृदधिकृतैः —
वारितान् द्वारि दीनान्,
नास्मान् पश्याब्धिकन्ये सरसिरुहरुचा-
मन्तरङ्गैरपाङ्गैः ।।

(५)

शूलीजातः कदन्नाशनविधुरतया भैक्ष्यभोगात् कपाली,
वस्त्राभावाद् दिगम्बरः, [illegible] जटावान् ।
इत्थं राजन् तव परिचयादीश्वरत्वं मयाप्तं,
तस्मान्मह्यं किमिति कृपया नार्धचन्द्रं ददासि ।

इस श्लोक में यह लिखा गया है कि अपनी बुरी हालत का किस [illegible] राजा से कह रहा है और अर्धचन्द्र की कमी को [illegible] से [illegible] के लिए कह रहा है ।

प्रहेलिका प्रकरणम्

१ अपदो दूरगामी च, साक्षरो न च पण्डितः।
अमुखः स्फुटवक्ता च, यो जानाति स पण्डितः॥
'पत्रम्'

२ वने जाता वने त्यक्ता, वने तिष्ठति नित्यशः।
पण्यस्त्री न तु सा वेश्या, यो जानाति स पण्डितः॥
'नौका'

३ गोपालो नैव गोपालो त्रिशूली नैव शंकरः।
चक्रपाणिः स नो विष्णुः यो जानाति स पण्डितः।
'सांड'

४ उच्छिष्टं[१] शिवनिर्माल्यं[२], वमनं[३] शवकर्पटम्[४]।
काकविष्ठासमुत्पन्नाः[५], पञ्चैतेऽतिपवित्रकाः॥

१ वत्सपीतं दुग्धं, २ गंगोदकम्, ३ मधु, ४ कौशेयं वस्त्रं, ५ अश्वत्थः

५ अनेकसुषिरं वाद्यं, कान्तं च ऋषिसंज्ञितम्।
चक्रिणा च सदाराध्यं, यो जानाति स पण्डितः॥
'वल्मीकिः'

६ वने वसति को वीरो योऽस्थिमांसविवर्जितः।
अतिवत् कुरुते कार्यं, कार्यं कृत्वा वनं गतः॥
कुम्हार के घर जाने का डोरा॥

७ रविजा, पीपी कुम्भाभा, तापहन्त्री जगत्प्रिया।
वर्धते वनसंयोगेन, न तापि यमुनापि न॥
'दोंघर'

८ तरुण्यालिङ्गितः कण्ठे, नितम्बस्थलमाश्रितः ।
गुरूणां सन्निधानेऽपि कः कूजति मुहुर्मुहुः ॥
स्त्री के कमर पर धरा हुआ घड़ा

९ अवलोक्य स्तनौ वध्वा, गुंजाफलविभूषितौ ।
निःश्वस्य रोदितुं लग्ना, कुतो व्याध कुटुम्बिनी ॥

१० आपाण्डु पीन कठिनं, वर्तुलं सुमनोहरम् ।
कौ स्पृहयतेऽस्मर्थ, किं वर्द्धेरेव सस्पृहम् ॥
'पक्व बिल्व फलम्'

११ एकचक्षुर्न काकोऽयं, बिलमिच्छन्न पन्नगः ।
क्षीयते वर्धते चैव, न समुद्रो न चन्द्रमाः ॥
'सूच्यहम्'

१२ चक्रधारी न राजासौ, जटाधारी न चेश्वरः ।
पाक्षिकाणि न च पक्षी, छिद्रकारी न तस्करः ॥
गम्य हलकं छेदिकाहम् ॥

१३ अस्थि नास्ति, शिरो नास्ति, बाहुरस्ति निरङ्गुलिः ।
नास्ति पादद्वयं गाढमङ्गमालिङ्गति स्वयम् ॥
'कञ्चुकम्'

१४ अतिग्रीवा शिरो नास्ति, द्विभुजौ करवर्जितौ ।
सीताहरणसामर्थ्यो, न रामो न च रावणः ॥
(कांचली)

१४ नलस्य समुत्पन्ना, लोकेषी येह वोजिता।
अङ्गुली लुतते शब्दं, जानमाना विनश्यति॥
(लुङ्कीबजाना)

१५ दन्तैर्हीनः शिलाभक्षी, निर्जीवो बहुभाषकः।
गुणस्यूतिसमृद्धोऽपि, परपादेन गच्छति॥
'जूता'

१७ न तस्यादिर्न तस्यान्तो, मध्ये यस्तस्य तिष्ठति।
तवाप्यस्ति ममाप्यस्ति, यदि जानासि तद्वद॥
'नयन'

१८ यवसादिः स एवान्तो, मध्ये भवति मध्यमः।
य एतन्नाभिजानीयात्तृणमात्रं न वेत्ति सः।
'यवसः'

१९ पर्वताग्रे रथो याति, भूमौ तिष्ठति सारथिः।
चलते वायुवेगेन, पदमेकं न गच्छति॥
'पतंग'

२० प्रथमं च वर्तुलाकारं, द्वितीयं चतुरक्षरम्।
पकारादि मकारान्तं, यो जानाति स पण्डितः॥
'पालगामः'

२१ अर्धचन्द्रवदाकारं, स्त्रीनामार्थे त्र्यक्षरम्।
नकारादि रिकारान्तं यो जानाति स पण्डितः॥
'नागरि'
(नागरिकमाला)

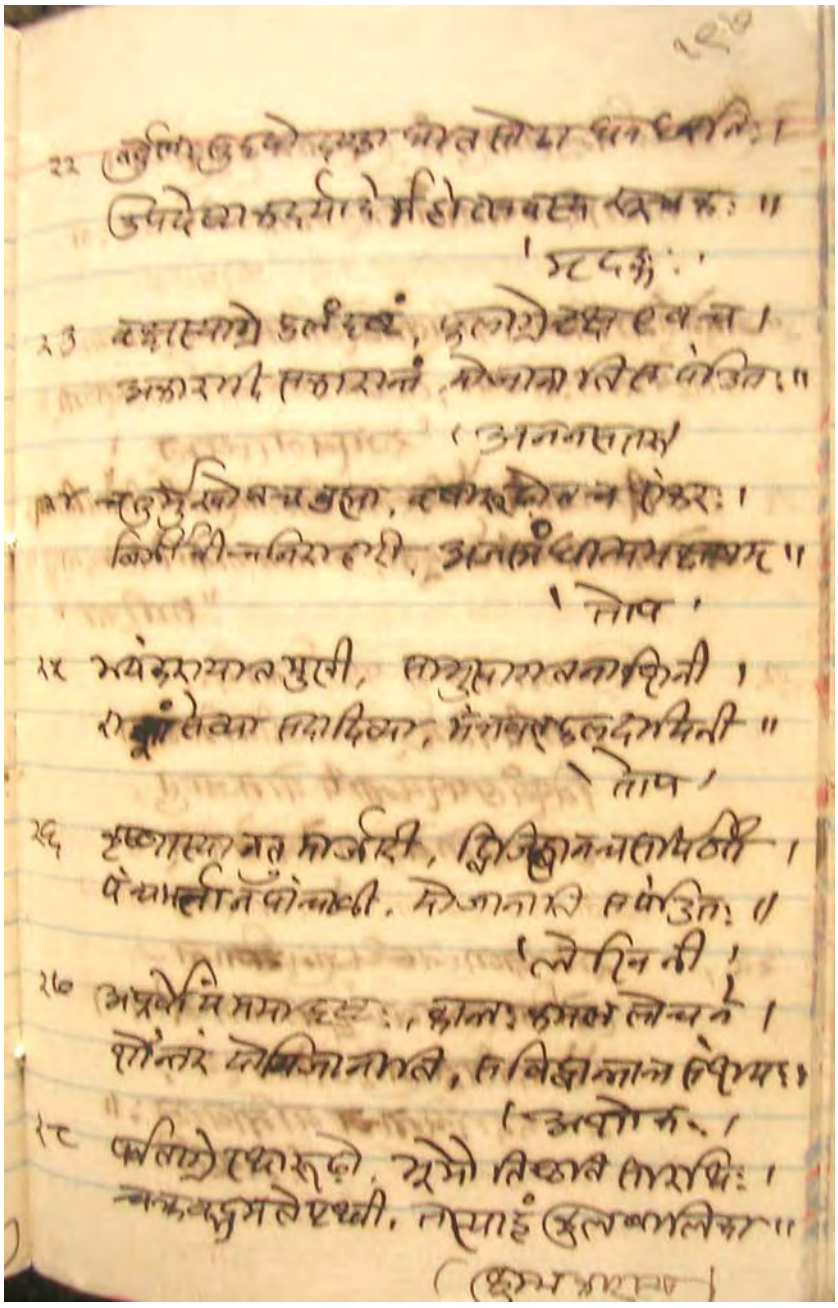

२२ [illegible] ।
[illegible] ॥
'षट्पदी'

२३ [illegible], [illegible] ।
[illegible], [illegible] ॥
(अनन्वयालं)

२४ [illegible], [illegible] ।
[illegible], [illegible] ॥
'लोप'

२५ भयंकरायात[illegible], [illegible] ।
[illegible], [illegible] ॥
'लोप'

२६ [illegible], [illegible] ।
[illegible]. [illegible] ॥
'लोभिनी'

२७ अपूर्वोऽसि [illegible], [illegible] ।
शौन्तरं [illegible], [illegible] ॥
'अपोन्हु'

२८ [illegible]. [illegible] ।
[illegible]. तस्याहं कुलपालिका ॥
([illegible])

१८८

२९ अर्धचन्द्रसमाकारं, पुन्नामचतुरक्षरम् ।
ककारादिलकारान्तं यो जानाति स पण्डितः ॥
'कोपोष्ठ'

३० अनुनेतुं मानिन्याः दयितश्चरणौ सरागचरणाभ्याः ।
नावत्पतितः सवपा, तत्क्षणमवधीरितः कस्मात् ॥
'रजश्चलात्वात्'

३१ सदाविमध्यापि न वैरियुक्ता, नितान्तरक्तापि सितैव नित्यम् ।
यथोक्तवादिन्यपि नैव दूती, का नाम कान्तेति निवेदयाशु ॥
"सारिका"

३२ भोना देवो न पशुर्न नारी:,
नचापि तिर्यङ् नच जीवमिन्नः ।
विश्वं प्रपञ्चयन्नापि पोतजातु,
इत्येति यो वेद स वेद वेदान् ॥
'आत्मा'

३३, रम्भेक्षणा लब्धजनुर्वनान्त-
लोला सखाय द्वनमोलजीवा ।
रसैकविज्ञा ननु जीवनस्य,
वेन कदाचिन्नाच यातिवासः ॥
(मछली)

३४, वृक्षाग्रवासी न च पक्षिराजः,
त्रिनेत्रधारी न च शूलपाणिः ।
त्वग्वस्त्रधारी न च सिद्धयोगी,
जलं च बिभ्रन्न घटो न मेघः ॥
'नालिकेर'

३५, वृक्षाग्रवासी न च पक्षिजाति-
स्तृणं च शय्या न च राजयोगी ।
सुवर्णकायो न च हेमधातुः,
पुंसश्च नाम्ना न च राजपुत्रः ॥
'आम्रः'

३६. चक्री त्रिशूली न हरो न विष्णुः,
महान् बलिष्ठो न च भीमसेनः ।
स्वच्छन्दचारी नृपतिर्न योगी,
सीतावियोगी न च रामचन्द्रः ॥
'महोक्षः'

३७ आद्येन हीनं जलधावदृश्यं,
मध्येन हीनं भुवि वर्णनीयम् ।
अन्तेन हीनं ध्वनते शरीरं
कान्तापितिः स श्रियमातनोतु ॥
करजः (नखः)

२००

३८ सर्वस्वापहरो न दस्युकुलजः, खड्गांगभृन्नो भटो,
दोषानिष्टकरो, न धर्मनिरतः शीलालयो नासुरः।
नृणां रक्तपकाम्यतो न पिशुनः, दीर्घांगमोनो हयः।
पापप्रान्त्रिचरो न राक्षसगणः, कोऽयं सखि ब्रूहि मे॥

। मत्कुणः।

३९ सर्वस्वापहरो न तस्करगणो रक्षो न रात्रीचरः,
सर्पो नैव बिलेशयो खिल निशाचारी न भूतोऽपि च॥
अन्तर्धीन पटुः न सिद्धपुरुषो नाप्याकुलो मारुतः,
तीक्ष्णास्यो न तु तायकस्तमिह ये जानन्ति ते पण्डिताः॥

मत्कुणः।

४० जाता शुद्धकुले जघान पितरं, हत्वा पितृद्वुद्धकः।
लोकेषा वनिता पितैव सततं विश्वस्य या जीवनम्।
तेनैव प्राप्य पितामहेन जनकं प्रसूत या कन्यका,
ता सर्वैरपि वन्दिता क्षितितले, तन्नाम का-
नामिका॥

। जलौकः।

———o———

कूटानि

१- केशवं पतितं दृष्ट्वा, द्रोणो हर्षमुपागतः।
रुदन्ति कौरवाः सर्वे, हा केशव कथं गतः॥

२- पानीयं पातुमिच्छामि, त्वत्तः कमललोचने।
यदि दास्यसि नेच्छामि, नो दास्यसि पिबाम्यहम्
(दासी+असि = दास्यसि)

३- विषं भुंक्ष्व महाराज, भजनैः परिवारितः।
विना केन विना नाभ्यां, हृष्णाजितमहंकृतम्॥
(राज्यमित्यर्थः।

४. सुवर्णस्य सुवर्णस्य, सुवर्णस्य च जानकि।
प्रेषिता तव रामेण, सुवर्णस्य मुद्रिका॥

५. एकोना विंशतिः स्त्रीणां स्नानार्थं सरयूं गताः।
विंशतिः पुनरायाता, एको व्याघ्रेण भक्षितः॥

६. सुवर्णालंकृता कन्या, हेमालंकारवर्जिता।
सा कन्या विधवा जाता, पतिः रोदिति तद्गृहे॥

७. अहं च त्वं राजेन्द्र, लोकनाथावुभावपि।
बहुव्रीहिरहं राजन्, षष्ठीतत्पुरुषो भवान्॥

८ कात्रे धावन्य मे कदै विविभत्र्या तिवेदिता ।
तया धावितौ दो, मधुरिज्ञा तलोकिता ॥

९ तोतेन कथितं उमे, लेलँ लिपमाम्रिदा ।
नतेन लिखितोलेवः, पितुरग्झानलेगदिता ॥

१० फुज्जदाली, गदकाली, कवीन्द्र विजयाकधम ।
भक्तवल्लभमतंयोगाऽजोता विातकंचुपी ॥

११ वेंवो विग्रुसीफिकाइँ मजेडे किल मव्ययीभावः ।
तद्धितप कर्मधारय येनाइँ एकौ बहुव्रीहिः ॥

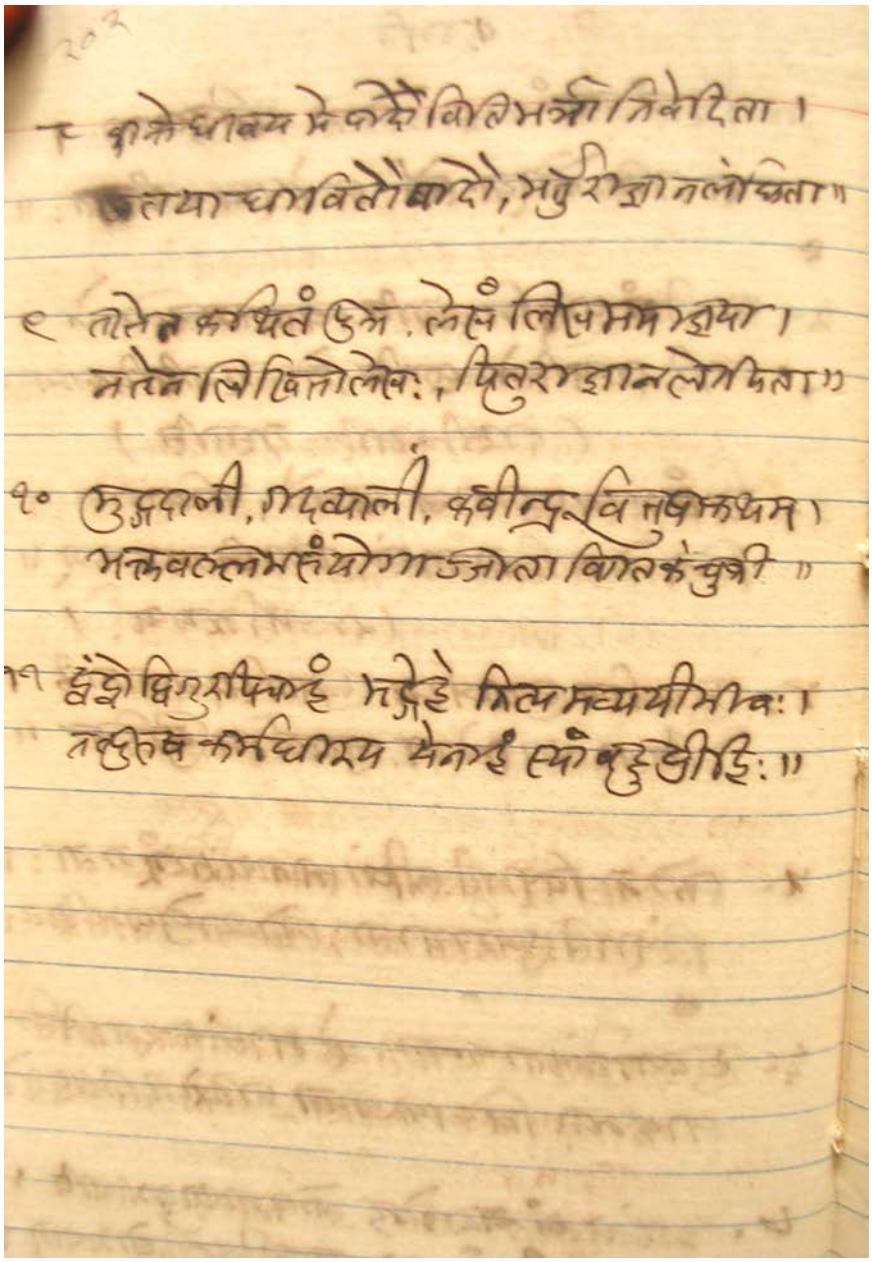

आर्या मिश्र -

१. एक पद्य यवनीनवनीती,
सम्मद मदमुग्ध मुलस्थी ।
प्रदुवाच पीवरी कुपितेव ।
चलमेव हुविन दे मुझको तू ॥

२, ज्वरादितोदा कटुकाम कषायान्,
न च पिबति किं वद वैद्यं देयम् ।
निक्रोध इति मधुं प्रचारे,
वहीं वमक्षा शरबत् पिलावे ॥

३. पित्ततापित शरीर वल्लरी,
सा सखी, वद, 'हकीम, दवायी ।
औषधं धुवु मगादि मनोज्ञं,
'जो गुलाब. गुलकन्द खिलादे ॥

४. हा हन्त किं त्वमसि सुन्दरि दुःखिते व,
का क्लिश्यते मम सखी, वद किं हि तस्याः ।
अस्तीदृशविधुरदि वैद्य न पश्यते ऽन्यो,
दे तो गुलाब जल संग त्रिकं जवीना ॥

५, दृष्ट्वा वासरीके तन्वानमपयोतिनां, ताम्बूलरागाधरां,
ताकृतं निजगाद "दुर्जन हुई, चाहे सुद्धी लीजिए।
तर्की गच्छ पोवके, स्पृहयाऽपि त्वत्तेवर्तं मे मनः,
जो चित्त वारितं प्रसीद! इमरे तोके कलागो जरा।"

६ अन्यां कामपि कुलवार्य ललमेतां मातंगकुम्भस्तनीं,
दृष्ट्वा तद्रिमन साइं जान तुमरी का है किये अंगिया)
निघ्नन्ती नितरां कपोल विविरवे:, सावग्विदग्धपुरः,
नामि ठा दमुकाच्य ' हात धारिके तीन पमल्मलाही)

७, पापोद्यानमहं कदाचिदगमं बोह इश्क के लिए,
तच्चित्तम्रक्षुंगलोल ललना, दिल्दार मालिन्निती,
मद्वाक्यं वनपालिके श्रुणु मनाक् कौन तू देगी मुझे,
सेतुकाऽङ न तानि मेत्व मधुना, मवा जरा लीजिए"

८, हा मन्मन कुतापः ज्वलया ' जो जलाया,
रतिनयन जलौघैः ' रघाकवासीब हाया।
तदपि दहति चित्तं, हाय मैं क्या करूंगी,
मदनरिपुरिति भूयः, कपि बच्चा आगलोगी"

१

अपनी अपनी गरज सब, बोलत करत निहोर।
बिन गरजै बोलै नहीं, गिरिवरहू को मोर॥

२

जो पहले कीजे यतन, सो पीछे फलदाय।
लाय लगे खोदे कुंवा, कैसे आग बुझाय॥

३

जाट कहै सुन जाटनी, यही गांव को रहना,
ऊंट बिलैया ले गई, हांजी हांजी कहना॥

४

कीना है सो आज कर, [illegible] मत जा टर।
चलता फिरता आदमी, छिन में जावे मर॥

५

का हुए गए मुगलिया आए, बोलन लागे फारसी,
आब आब कर जान निकल गए, सिरहाने रखा पानी॥

६

काम क्रोध मद लोभ की, जो लों मन में खान।
की पंडित का मूरखा, दोनों एक समान॥

७

गरज धीर होत हैं, नई होत अधीर।
सावन पाय [illegible], [illegible] नीर॥

२०५

८

खान देखा खुदे लै दूबा, दाखिल दूबी गोते ते।
मार खोड़ मनख्य बेदूबा, फ़रबदूबी जाते ते॥

९

गोधन गजधन कनकधन, रतनधन बहु खान।
जब आवे संतोषधन, सब धन धूरि समान।

१०

चलबो भलो न कोस को, दुहिता भली न एक।
मांगी भलो न बाप को, जो विधि राखै टेक॥

११

जो तुम मजनूं जानते, जानत हंस तो होय।
ऐसी करनी का करते, कि तुम इंसान होते॥

१२

जोड़ जोड़ मर जायगे, माल जमाई खावेंगे।
जवांई भी न होगा तो, [illegible] ले जायेंगे।

१३

जो पारस ते कंचन उपजै, सो पारस है कांच।
जो पारस ते पारस उपजै, सो पारस है सांच॥

१४

को हर्ता, को कर्ता, को मोक्ष विचारका।
को तन मन अरपनो, बिन एक टका के॥

१४

चतुर मूरख को कभी, जो दे तुम्हें ठेस।
आशीष ले पावजो, और बोट ले देस॥

१५

गलगोला मत करे, जिसे बचन भुगताय।
जो नर बचनों से गिरा, वह पल देवा गंवाय॥

१६

तन पुतला है खाक का, इसे देख मत फूल।
(जब तोता उड़ जाता है, तो हो जा पिंजर धूल)
~~ऐसा~~ इक दिन ऐसा आयगा, मिले धूल में धूल॥

१८

मन लोभाय पिंजर करे, धरे न दिन ध्यान।
तुलसी सिद्ध न वाचना, बिना विचारे ज्ञान॥

१९

हाथी के मुख से गिरा, एक छटांक आहार।
लाखों चींटी ले गई, पावन को दीदार॥

२०

ईमान-चोट
२० तिरिया बुद्धि में तीन गुन, औगुन लाख हजार।
मंगल गावे [illegible], आप कोमल उपजे [illegible]॥
२१ तिरिया तो सूं जो कहे, सूक्ष्म तूं पहिचान॥
तिरिया [illegible] जो [illegible], वह तो है अज्ञान।

२२

नारी को विष की बेल है, [illegible] की चाल।
या का केह स्रोत है, तीन धाम [illegible]॥

२३

कुल सीं जात है आपके, तीन बाल ले व।
जो लेख को आराध करे, बांके फल तुम देव॥

२४

दांत गिरे और खुर घिसे, पीठ बोझ ना लेइ।
ऐसे बूढ़े बैल को, कौन बांध भुस देइ॥

२५

दाता के घर लक्ष्मी, बांदी रहत हजूर।
जैसे गागर सागर को, भर लावे मजूर॥

२६

दाता के नाम गए, रह गए मक्खीचूस।
लेना देना कुछ नहीं, लड़ने को मजबूत॥

२७

पंडित और मसालची, दोनों उल्टी रीत।
और दिखावे चांदनी, आप अंधेरे बीच॥

२८

पंडित पोथी बांचते, मुल्ला पढ़े कुरान।
लोग मुल्ला काल फिरें, कोई मिले भगवान॥

२९

पंडितकथे लोकमारगके, गलेलपेटे सूत ।
आप मरम जाने नहीं, भये जंगल के भूत ।।

३०

का पढ़िले तीर्थ गमन, का पढ़िल कुछ दान ।
जब पढ़िल तब होत का, भजले श्री भगवान ।

३१

पनारी पैनी छुरी, तीन जगह से खाय ।
द्रव्य लेय यौवन हरे, मुए नरक ले जाय ।

३२

पोथी में सुख है नहीं, जिन बांची कुल लोग ।
याते पंडित त्यागदे, है सबका दुख लोग ।।

३३

पान पुराना घीनया, औ कुलवन्ती नार ।
चौथी पीठ तुरंग की, स्वर्ग निशानी चार ।।

३४

मनका फेरत दिन गया, गया न मनका फेर ।
करका मनका छांडके, मनका मन का फेर ।।

३५

मांगन गए सो मरगए, सो जो मांगन जाहिं ।
उनसे पहिले वे मरे, जो होते कहदें नाहिं ।।

३६

ढूंढ़ फिराए जग सारे, नाहीं मिले जो मीत।
बिछड़ी अपना [illegible], मन [illegible] मीत॥

३७

अब बातें मत कीजियो, कहीं न तू अब यार।
जिन बातों में रस नहीं, सांई को तकरार॥

३८

तू मत मान हुकम को, मैं हूं पीर जवान।
हुकमों [illegible] जीवन में लाना है बड़ काम॥

३९

मट्टी उड़ोना, मट्टी बिछोना,
मट्टी का सिरहाना है ।
एक दिन ऐसा होगा बन्दे,
मट्टी में मिल जाना है ॥१॥

चुन चुन कंकर महल बनाया,
लोग कहें घर मेरा है ।
ना घर मेरा, ना घर तेरा,
चिड़िया रैन बसेरा है ॥२॥

पाप दगा कर माल कमाया,
सूरत लगी उसी धन में ।
नौ दर बाजे बन्द भये तब,
रह गई मन की मन में ।

— ० —

प्रति-काव्य-उदाहरणं -

१

[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥

२

[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥

३

[illegible] । [illegible] तया ।
[illegible] ॥

४

[illegible] विद्युच्च,
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥

५

[illegible] विपरीत [illegible] ।
[illegible] विपरीत [illegible]

६

हे हेमकार पर दुःख विचारमूढ,
किं मां मुहुः क्षिपसि वारशतानि वह्नौ।
दग्धे पुनर्मयि भवन्ति गुणातिरेका,
लाभः परं खलु मुखे तव भस्मपातः॥

७

कतिचिदुद्धत निर्भर मत्सराः,
कतिचिदल्पवचःस्तुतिशालिनः।
अहह केऽपि निरस्तर कुत्सया-
स्तदिह सम्प्रति के प्रतितभ्रमः॥

८

दुर्जन (हुताश) तप्तं काव्यसुवर्णं विशुद्धिमुपयाति,
दर्शयितव्यं तस्मान्मत्सरमनसः प्रयत्नेन॥

९

आघ्रातं प्रतिचुम्बितं प्रतिमुहुर्लीढं यदुच्चर्वितं,
क्षिप्तं वा यदि नीरसेन कपिना तत्राव्यथां मा कृथाः।
हे माणिक्य तवैव तच्च कुशलं यद्वानरेणाकुला-
प्यन्तास्तत्त्व निरूपणव्यसनिना चूर्णीकृतं नाश्मना॥

१०

कालाक्षराशुद्धय सुधाप्रसादाज्जिह्वाग्रितो निग्रहमुग्रमापुः।
इतीव भीताः पिशुना भवन्ति पराङ्मुखाः काव्यरसामृतेषु॥

— ० —

११

अवनिजनमनस्त्यागवेषणाय .

कृतो धामानां खलु कैसरिणाम् ।
कनीनिकावाङ्निरुद्धे निरिक्षिणयां ,
सं जायते व्यर्थमनोरथत्वम् ॥

१२

इदम्प्रकृता एत पलयोने : ,
किमत्य हेमा भुजगेऽनुकम्पा ।
योऽस्यापि विधानव पक्षहंगं ,
गलेलग्नं गात्येन निर्ममीते ॥

१३

नैव व्याकरणाद्ध नैव पितरं न भ्रातरं तार्किकं ,
मीमांसानिपुणं नपुंसकमिति ज्ञात्वा निरस्तादरा ।
दूरात्त्वं कुञ्चितेव गच्छति पुनश्चाण्डालवच्छान्दसं ,
काव्यालंकरणज्ञमेव कवितकान्ता वृणीते स्वयम् ।

सन्मित्र प्रकरण –

व्याधितस्यार्थहीनस्य देशान्तरगतस्य च ।
नरस्य शोकदग्धस्य सुहृद्दर्शनमौषधम् ॥

२

स्वाभाविकं तु यन्मित्रं भाग्येनैवाभिजायते ।
तदकृत्रिमसौहार्दमापत्स्वपि न मुञ्चति ॥

३

मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानन्दनं चेतसः
पात्रं यत्सुखदुःखयोः सह भवेन्मित्रेण तद्दुर्लभम्
ये चान्ये सुहृदः समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुला
स्ते सर्वत्र मिलन्ति तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत् ॥

४

बिपति बराबर सुख नहीं, जो थोड़े दिन होय ।
इष्ट मित्र बन्धू जिते जानि परें सब कोय ॥

५

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः,
क्षीरोत्तापमवेक्ष्य तेन पयसा स्वात्मा कृशानौ हुतः ॥
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद् दृष्ट्वा तु मित्रापदं
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥

नीति प्रकरण

मालाभितानि विफलानि हसंत्यपि,
नक्तानि पंक्तिजलजानि दुरासदानि ।
गन्धेन बन्धुरमसि येनाऽलि लब्धजन्मा,
रेको दुरन्ते खलु निहन्ति तमालकोशान् ॥

२

अनामा स्वर्णमाधत्ते, न कनिष्ठा न मध्यमा ।
निजनामप्रसिद्धानां भूषणैः किं प्रयोजनम् ॥

३

स्वर्णं धनानि धनिका प्रतिगृह्णतो य-
दास्यं भजेन्मलिनतां किमिदं विचित्रम् ।
गृह्णन् पाथांस्यपि वारिनिधेः पयोऽपि,
मेघोऽयमेति सकलोऽपि च कालिमानम् ॥

४

हालाहलं नैव विषं, विषं रमा-
जनाः परं व्यत्ययमत्र मन्वते ।
निपीय जागर्ति सुखेन तं शिवः,
स्पृशन्निमां मुह्यति निद्रया हरिः ॥

५

इदमेव हि पाण्डित्यं इयमेव विदग्धता ।
अयमेव परो धर्मो यदायान्नाधिको व्ययः ॥

६

इह तुरंगशतैः प्रयान्तु मूर्खा,
धनरहिता विबुधाः प्रयान्तु पद्भ्याम्।
गिरिशिखरगतापि काकपंक्तिः
पुलिनगतैर्न समत्वमेति हंसैः॥

७

को न याति वशं लोके, मुखे पिंडेन पूरितः।
मृदंगो मुखलेपेन करोति मधुरध्वनिम्॥

८

विदुषां वदनाद्वाचः, सहसा यान्ति नो बहिः।
याताश्चेन्न पराञ्चन्ति, द्विरदानां रदा इव॥

९

यस्मै कस्मिंश्चिन्न देयं स्यात्तस्मै देयं किमुत्तरम्।
अपहार्यं पुनः प्रातः, सायं प्रातः पुनः पुनः॥

१०

मूर्खस्य पंच चिन्हानि, गर्वो दुर्वचनी तथा।
हठी चाप्रियवादी च परोक्तं नैव मन्यते॥

११

खलो भजयते दोषान्, गुणग्राही [illegible]।
वने पुष्पफलाकीर्णे, पुरीषं भजति मधुकरः॥

१२

जलनिधौ जननं धवलं वपुः,
मुररिपोरपि पाणितले स्थितिः ।
इति समस्त गुणान्वित शंख भोः,
कुटिलता हृदये न निवारिता ॥

१३

पत्राणि जीर्णानि, फलं विनष्टं,
छायागता पक्षिकुलैः प्रयातम् ।
वृन्तेन जीर्णोऽपि, तवाश्रया हो,
तमुत्पातिं नैव जहाति वृक्षः ॥

१४

न सन्ध्यां संधत्ते, नियमितनमाजं न कुरुते,
न वा मौंजीबन्धं, कलयति न वा सुन्नतविधिम्.
न रोजां जानीते, व्रतमपि हरेर्नैव कुरुते,
न काशी मक्का वा, शिव शिव न हिन्दुर्न यवनः ॥

१५

पिके हि [illegible] कुहू [illegible],
[illegible] [illegible] कुहू ।
किन्तु त्वयि [illegible] प्रविधाय विम्बम्,
खद्योत मुद्योतय [illegible] ॥

१६

अधः पश्यसि किं वृद्धे, तव किं पतितं भुवि ।
रे रे मूर्ख न जानासि, गतं तारुण्यमौक्तिकम् ॥

१७

माघकविकृत ऋतुवर्णन

विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः,
कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाणः ।
कृतचपलविहंगालापकोलाहलाभिः
जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः ॥

१८

ग्रीष्म मौशिं मल्लज विकसले,
मूढ निबध्नामि हिमानिकाम् ।
विरोधयति पालितानि केहले,
धनं ध्वानं मधुपानमोह ॥

१९

वासः प्रधानं खलु योग्यतायाः
वासो विहीनं विजहाति लक्ष्मीः ।
पीताम्बरं वीक्ष्य ददौ तनूजां
दिगम्बरं वीक्ष्य विषं समुद्रः ।

२१

कालिदासस्य कविता नवं वयो,
माहिषं दधि सशर्करं पयः।
शारदेन्दुवदना विलासिनी,
जायते सुकृतिनैव लभ्यते॥

२२

आयुःप्रोक्तं दीर्घमायुर्वाच्यं मौहूर्तिकैर्द्विजैः।
जीवन्तो बहु मन्यन्ते, मृताः स्वच्छन्दनिकेतनाः॥

२३

विष्णोः प्रार्थय मेदिनीं धनपतेर्बीजं बलाल्लाङ्गलं,
प्रेतेशान्महिषं तवास्ति वृषभः फालं त्रिशूलं तव।
शक्ताहं तव चान्नदानकरणे स्कन्दोऽस्ति गोरक्षणे,
खिन्नाहं तव भिक्षया कुरु कृषिं गौरीवचः पातु वः।

२४

असारे खलु संसारे, सारं श्वशुरमन्दिरम्।
हरो हिमालये शेते, विष्णुः शेते महोदधौ॥

२५ बूढे की उक्ति—

आपाण्डुराः शिरसिजास्त्रिवली कपोले,
दन्तावली विगलिता न च मे विषादः॥
एणीदृशो युवतयः पथि मां विलोक्य
तातेति भाषणपराः खलु वज्रपातः॥

२६

कालः काञ्चनपिंजरे न्यप तत्याभोऽसौ स्मात्तू मार्जनं,
भक्ष्यं स्वादु रसाल दाडिमफलं पेयं सुधाभं पयः ।
पाठः संसदि रामनाम सततं धीरस्य कीरस्य मे,
हा हा हन्त तथापि जन्मविटप क्रोडं मनो धावति ॥

२७

एतेषु हा तरुणमारुतधूयमान-
दावानलैः कवलितेषु महीरुहेषु ।
अम्भो न चेज्जलद मुञ्चसि मा विमुञ्च,
वज्रं पुनः क्षिपसि निर्दय कस्य हेतोः ॥

२८

सार्थकोऽहं त्वया मित्र. न स्मराम्यहं तव ।
स्मरणं चेत्तवो धर्मस्तच्चैतो भवता हृदम् ॥

२९

मातर्भारतभूमि देवि कुतस्त्याद्यः प्रभूतिः पुरा,
विज्ञानादिकलाविदां विदुषां मनाग्भावपरीक्षादया ।
यैताके दिवसार्थपा सुविशपाः स्वल्पोऽन्ततान तोऽपि,
हा हा कष्टमनः तं मदं महाशोकाम्बुधौ मज्जति

——— ० ———

मितव्ययता

(१) इदमेव हि पाण्डित्यमियमेव विदग्धता ।
अयमेव परो धर्मो यदायान्नाधिको व्ययः

(२) मितव्ययता की मितव्ययता यही है कि थोड़े समय में अधिक से अधिक उत्तम काम किया जाय

(३) योग्याहार विहारः ।
तदहंगतस्त्विषो कालतः ।
यदि पापनिरोधोऽन्य सम्पदा किं प्रयोजनम् ।
शुभकृत तोषो धनसंचय ।

(४) अन्य विनश्वर एवं अस्थायी वस्तुओं की अपेक्षा बहुमूल्य एवं पुनः अलभ्य समय की मित-व्ययता का सदुपयोग करना ही सर्वश्रेष्ठ है?
"समयं गोयम मा पमाइए"
'समय थोड़ो बोट घनी रे वीरा,'
'गया वक्त फिर हाथ न आवे लूटो हो लूटन हारे ।'

(५) यथावसर समय, शक्ति और धन की मितव्ययता सर्वश्रेष्ठ है ।

(६) "शक्तितस्त्यागतपसी"

(५) सस्ता रोवे ~~एक~~ बार बार, मेंहगा रोवे एक बार)

७।

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न संतोषतः,
सोढा दुस्सहशीतवाततपनक्लेशा न तप्तं तपः।
ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितैप्राणैर्न शुम्भोः पदं,
तत्तत्कर्म कृतं यदेव मुनिभि स्तैस्तैः फलैर्वञ्चिताः

२

दिवसे दिवसे लक्खं देइ सुवण्णस्स खंडियं एगो।
इयरो पुण सामाइयं करेइ न पहुप्पए तस्स॥

३

कंचणमणिसोवाणं थंभसहस्सुस्सियं सुवण्णतलं।
जो कारिज्ज जिणहरं तओ वि तवसंजमो अहिओ॥

४

उठ सिंह मम भंत कर, करि हुओ दाण बसेण।
हुं सामाइय रायधुअ, बहुगुण समहिय तेण॥

इस दोहे का आशय है कि लाखों का दान करनेवाला सेठ मरकर हाथी हुआ और प्रतिदिन सामा-
यिक करनेवाली पुत्रिका राजसुता। वह उस गज को संबोधन कर उक्त दोहा कहती है

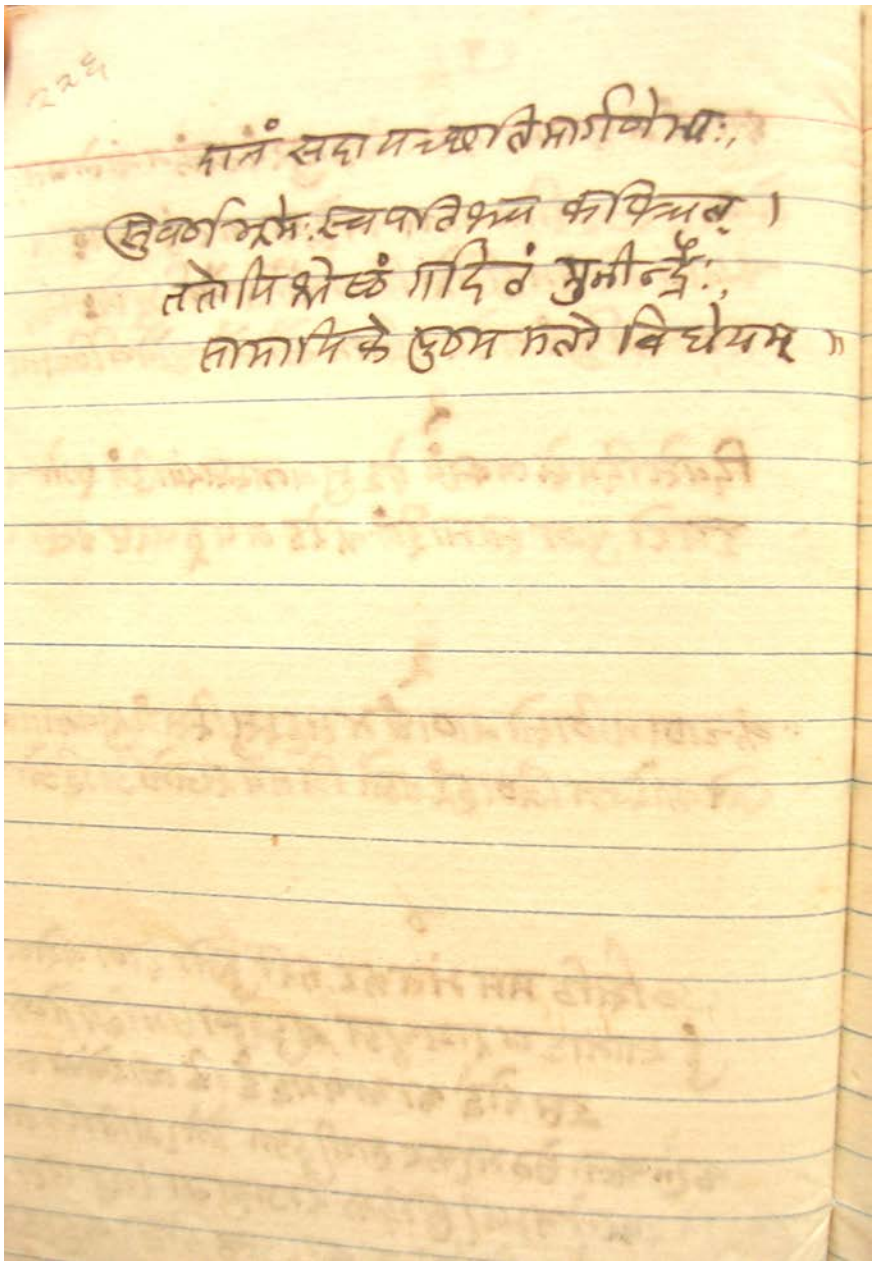

मतं सदा यच्छति मार्गविज्ञः,
सुवर्णमूर्तेः स्वपरिश्रम्य कश्चित् ।
ततोऽपि श्लोकं गदितं मुनीन्द्रैः,
सामायिके पुण्यगतो विधेयम् ॥

मरणके चिन्ह.

१

१ रातको नींद न आना
इन्द्रियोंकी शिथिलता
खांसीका चलना हिचकी आना
पीडा होना, प्यास लगना
गरदन का न ठहरना
सब चीजें लाल दिखना
वृक्षोंका जलते हुए दिखना.

२

नेत्रोंकी चमक मोतीके पानीके
समान उतर जावे और किसीको
पहचाने नहीं तो रोग असाध्य
समझो।

३

जीभ को नाक की नोक अपनी ओरसे
न दिखे तो असाध्य।
अपनी छायामें अपना मस्तक
नहीं दिखना।

रातको ध्रुव तारा न दिखना

४

दोनों कानोंमें अंगुली देनेसे शब्द नहीं सुनाई दे तो मरण निकट जानो।

५

मौं टेढ़ी होनेपर ९ दिन
आवाज सुनाई न देने पर ७ "
गंध न मालूम होनेपर ५ "
हाथकी लकीरें न दिखनेपर ३ "
जीभसे स्वाद न मालूम होनेपर १-२ "

६

छींकके साथ ही मल-मूत्र निकल जावे मरण निकट

७

सर कांपने लगे तो ६ घंटे

८

हाथ वगैरह छोटा दिखे तो १८ दिन

९

कपड़ा मैला दिखे तो २० दिन

दर्पण या पानी में सूरत न दिखने पर १ दिन
जीभ काली दिखने पर ४ "
सरसे धुंआ निकलता दीखे १ मास
नहाते समय पैर छाती सूखे दीखे १ "
शरीरमें दुर्गंध आवे २ मास
सूर्यचंद्र में छिद्र दिखे तो ३ "

धीलों में जप अटकर देखे
इन्द्रधनुष दिखे तो ६ मास ।

छाया विपरीत दीखे ६ मास

स्वप्नों रेती बरसती देखे ६ "

बिजली की ज्यों ६ "

कौआ शरीरपर आगिरे ६ मास

पैर छोटा दिखे ७ मास
मन सोना चांदी सा चमकता
दिखे तो ९ "

थालमें सूर्यका बिंब देखे दक्षिण
दक्षिणमें रखे तो ६, पश्चिममें ३
ऊपरमें २ पूर्वमें १ बीचमें छिद्र १०
स्कंध ११ बिम्बकालो जानि
जीवन के शीघ्र लाओ।

२८-८-५८

स्फुट विचार संग्रह

(मेरे अच्छे महेन्द्र)

प्रसाद :—

लोग कहते हैं कि अन्य देवता गणेशादि के दर्शन करने को जाने पर तो कम से कम प्रसाद तो मिलता है. जिससे कि मुंह तो मीठा होता है. पर जैनियों के देव-दर्शन करने पर तो वह भी नसीब नहीं होता? मैंने सुना और सोचने लगा - क्या यह यथार्थ है? थोड़ी देर तक तो उनका कहना सत्य सा लगता रहा. पर जब गंभीरता से मैंने उस पर विचार किया तो अन्तरात्मा से उत्तर मिला — गणेश-दर्शन पर मिलने वाला प्रसाद तो नाम-प्रसाद है, नाम मात्र का इसलिए कि लेने पर नाम-मात्र को १-२ क्षण के लिए मुंह मीठा होता है, पर आगे के लिए अतृप्त वासना जगा देती है जो कि मनुष्य को निराकुल नहीं रहने देती. और उस प्रसाद से अतृप्त इच्छा को तृप्त करने के लिए पैसे खर्च कर पुनः बाजार से मिठाई खरीदना पड़ती है और इस प्रकार मनुष्य उत्तरोत्तर मिठाई का लोलुपी हो जाता है. पर वीतराग जिनेन्द्र के दर्शन करने पर यह बात नहीं. किन्तु वहां सच्चा प्रसाद भाव-प्रसाद मिलता है. जिससे व्यक्ति को वह शान्ति प्राप्त होती है जो कि एक लम्बे समय तक आत्मिक व आनन्द का आस्वादन कराती रहती है।

हिंसादि पाँच पापों का फल

हिंसाफल—

पङ्गुकुष्ठिकुणित्वादि दृष्ट्वा हिंसाफलं सुधीः।
निरागस्त्रसजन्तूनां हिंसां संकल्पतस्त्यजेत्॥

असत्य फल—

मन्मनत्वं काहलत्वं मूकत्वं मुखरोगिताम्।
वीक्ष्यासत्यफलं कन्यालीकाद्यसत्यमुत्सृजेत्॥

चौर्यफल—

दौर्भाग्यं प्रेष्यतां दास्यमङ्गच्छेदं दरिद्रताम्।
अदत्तात्तफलं ज्ञात्वा स्थूलस्तेयं विवर्जयेत्॥

अब्रह्मफल—

षण्ढत्वमिन्द्रियच्छेदं वीक्ष्याब्रह्मफलं सुधीः।
भवेत्स्वदारसंतुष्टोऽन्यदारान्वा विवर्जयेत्॥

परिग्रहफल—

असंतोषमविश्वासमारम्भं दुःखकारणम्।
मत्वा मूर्च्छाफलं कुर्यात्परिग्रहनियन्त्रणम्॥

23

ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरा:

एक मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मा विष्णु महेश्वराः
एवं पुनर्विभिन्नाश्च ज्ञान चारित्र दर्शनम् ॥

ज्ञातं विष्णु सदाध्यातं चारित्रं ब्रह्म उच्यते ।
सम्यक्त्व ईश्वरः प्रोक्तो अर्हं मूर्तित्रयोऽत्मकी ॥

कर्ता ब्रह्मा क्रिया विष्णुः कारणं तु महेश्वरः ।
कार्य-कारण सम्पूर्णं महादेवः स उच्यते ॥

योगी का चमत्कार

नवभारत टाइम्स १६ जुलाई सन् ६८

–शिवकुमार गोयल–

भारत विदेशोंमें योगियोंके देशके रूपमें काफी प्रसिद्ध रहा है। भारतीय योगियोंकी चमत्कारिक घटनाओं की विदेशोंमें काफी चर्चा होती रही है। भारतीय सिद्धियोंकी चमत्कारिक घटनाओंके बारेमें विदेशोंमें अनेक पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं।

पुराणों व अन्य प्राचीन ग्रन्थोंमें वर्णित चमत्कारिक घटनाओंको भले ही कपोल कल्पित व गप्पकी संज्ञा दे दी जाये, किन्तु वर्तमान युगमें भी बहुत-सी ऐसी सिद्ध योगियोंकी चमत्कारिक घटनाएं घट जाती हैं, जिनपर बरबस विश्वास करना ही पड़ता है।

प्रसिद्ध विद्वान श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी भी पहले योगियोंके चमत्कारोंपर विश्वास नहीं करते थे, किन्तु नाथ सम्प्रदायके साधु की एक चमत्कारिक घटनाने उन्हें चमत्कृत कर दिया।

घटना सन १९१८ के लगभगकी है। श्री के. एम. मुंशी उन दिनों बम्बईमें वकालत करते थे। एक दिन वह अपने कमरेमें मुकदमेंके कागज निपटानेके बाद बैठे हुए अध्ययनमें तल्लीन थे कि अचानक कमरेके दरवाजेपर नाथ सम्प्रदायका एक कनफटा साधु आ धमका और उसने श्री मुंशीसे दस रुपयेका नोट मांगा। अपने अध्ययनमें बाधा पड़ी देखकर श्री मुन्शी क्रोधित हो उठे। उन्होंने तुरन्त गुस्सेमें भरकर कहा—ऐ बाबा यह भीख मांगनेकी जगह नहीं है, यहांसे चले जाओ।

नाथ योगी फिर भी टससे मस नहीं हुआ।

श्री मुन्शीने चपरासीसे कहा कि इसे कमरेसे बाहर कर दो।

इसपर नाथ योगी बोला—"बेटा! मुझे दस रुपया दे दो, तुमपर रामजीकी कृपा है। देखो, तुम्हारे हाथ पर क्या है, तुम्हें रामजी आशीर्वाद दे रहे हैं।"

श्री मुन्शीने अचानक अपना हाथ देखा, तो वह आश्चर्य चकित हो उठे। दाईं हथेलीपर हिन्दीमें लिखा हुआ था, "श्रीराम।"

नाथ योगी श्री मुन्शीसे आठ फुट की दूरीपर खड़ा हुआ था। उन्हें छूने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। अतः श्री मुन्शी नाथ बाबाके चमत्कार को देखकर चमत्कृत हो उठे तथा उन्होंने तुरन्त दस रुपयेका नोट बड़ी श्रद्धाके साथ योगीको दे दिया। योगीने उन्हें आशीर्वाद दिया व चला गया।

बादमें उन्होंने सोचा कि कहीं यह कल्पना या स्वप्न तो नहीं था, किन्तु उनकी हथेलीपर लिखे 'श्रीराम' अक्षर को साबुनसे मिटानेमें काफी समय लगा।

श्री के. एम. मुन्शीने इंगलैण्डके एक पत्रमें प्रकाशित अपने 'मैं सिद्धियों में क्यों विश्वास करने लगा', लेखमें लिखा है कि 'मैंने और भी अनेक सिद्ध योगियोंके चमत्कार देखे हैं, जिनसे मुझे योगियोंके चमत्कारोंमें पूर्ण विश्वास हो गया है।'

पुनर्जन्म

जयपुर, २१ जुलाई (यून्यू)। कोटा (राजस्थान) जिलेके खजूरना गांवके एक चमारक आठ वर्षीय लड़की सोनाने अपने पूर्वजन्मके बारेमें बड़ा विस्मयजनक रहस्योद्घाटन किया है।

छानबीन करनेपर इस बालिकाका कथन सही सिद्ध हुआ है।

सोनाका कहना है कि करीब दस वर्ष पहले वह संगोड़ गांव (कोटा जिला) के पं. बृजमोहनकी पत्नी थी।

कोटाके कलक्टर श्री बी. पी. सूद पुनर्जन्मके दावेकी सत्यता जाननेके लिए सोनाको संगोड़ गांव ले गये जहां इस लड़कीने अपना घर, पति और ससुर पहचाने।

बताया जाता है कि पं. बृजमोहनकी १८ वर्षीय पत्नी १० वर्ष पूर्व सर्पदंशसे मरी थी।

सोनाने अपने पूर्वजन्मकी रिश्तेदार अन्य दो महिलाओंको पहचाना और कलक्टरके समक्ष उनका नाम बताया।

सोनाने अपने पूर्वजन्मके माता-पिता, भाई-बहनका पता भी सही-सही बताया और अनेक दिलचस्प घटनाएं बतायीं।

कलक्टरका ख्याल है कि यह पुनर्जन्मका सच्चा मामला है।

धर्मका स्वरूप

वर्ग-भेदका नाम कभी भी धर्म नहीं है,
सम्प्रदाय औ' जाति भेद का पंथ नहीं है;
मानव अथवा जीव मात्रमें हीनता नहीं है।
जो वस्तु स्वभाव वास्तविक धर्म वही है ॥
ज्यों जलका स्वभाव स्वतःसे शीतल ही है,
और स्फटिक मणि सहजमें उज्ज्वल ही है;
पुद्गलके रस, रूप, गन्ध औ' वर्ण सहज ही।
त्यों चेतनमें ज्ञान चेतना धर्म सहज ही ॥
बाहरकी यह वस्तु कभी भी धर्म नहीं है,
ज्यों पर द्वारा किया गया कोई कर्म नहीं है;
चेतनका परिणमन स्वयंमें धर्म नहीं है।
है अखण्ड एक रूप न जिसके भेद कहीं है ॥
केवल स्पष्टीकरण हेतु दस खण्ड किये है,
जिनको चेतन आप सहज स्वभाव लिये है;
ज्यों अखण्ड है फूल पंखुड़ियाँ उपकरण हो।
त्यों अखण्ड है धर्मभुजाएँ अब पूर्ण हो ॥
है विभावमें फँसकर चेतन सुखको खोता।
और इस भांति बीज स्वयं ही दुःखके बोता ॥

उत्तम क्षमा

क्रोधके आरंभका बस हेतु ही अज्ञान है,
और उसके अन्तमें बस एक पश्चात्ताप है;
है विजय इसपर क्षमा बस हेतु जिसका ज्ञान ही।
और वह उत्तम क्षमा जहाँ क्रोधके नहीं भाव ही॥
वास्तविक सुख शांतिका शत्रु है तो क्रोध है,
भीरुका यह मुख्य लक्षण ग्रहण करता क्रोध है;
एक मस्तिष्क सन्तुलनकी क्षमा केवल मित्र है।
वीरका भूषण क्षमा है जो जगतका मित्र है॥
क्रोधका परित्याग हो परिवार और समाजमें,
क्षोभ उपजावे कभी ना भूलकर भी समाजमें;
वीरत्व बतलावे समय पर सहज ही स्वभावमें।
क्रोधको आने न देवें गृहस्थ भी निज पासमें॥
समय पर भी शांत रहता ले अहिंसक भाव हो,
आई विपत्ति टल देता जो सहज स्वभाव है;
मान औ अपमान सुख दुःख सबमें जो समभाव ही।
उत्तम क्षमा धारे मुनि जहाँ क्रोधके नहीं भाव ही॥

उत्तम मार्दव

विनय गुणका मुख्य हेतु ज्ञान ही इक मात्र है,
विनय गुण ही तो बनाता मनुजको यश पात्र है;
और अभिमानी विनय बिन मूर्ख है, अपात्र है।
करता नहीं अभिमान वह नर मार्दवका पात्र है॥
मूर्ख करता अष्टमद नहीं फिर जिन्होंमें एक भी,
नीचे झुकाता सर घमण्डी नहीं संभलते कभी;
है मार्दव इसपर विजय जहं दर्पका नहीं दाव भी।
है और उत्तम मार्दव अभिमानके नहीं भाव भी॥

उत्तम आर्जव

कपट मायाचार निर्बलता निशानी है कही,
और उसका त्यागना आर्जव निशानी है यही;
मन, वचन, और कायकी जहां है प्रवृत्ति एक ही।
वही उत्तम आर्जव बस कपट है नहीं नेक ही॥

औरका विश्वासघाती आत्मघाती भी वही,
धर्मचारी चाहे जितना भक्त बुगला है वही;
वह पथिक तिर्यंच गतिका आर्जव धारे नहीं।
हो न मायाचार ही यह आर्जव उत्तम यही॥

उत्तम सत्य

स्वपर दुःखदायक तथा मिथ्या वचन ही असत्य है,
परकी निंदा आत्मश्लाघा को न कहते सत्य है;
इक झूँठ पुष्ट करनेको बोले अनेक असत्य हैं।
कान में कहलो तो क्या पर वह होता व्यक्त है॥
क्यों किसीपर हो भरोसा झूँठ बोले आप ही,
और निज विश्वास जगमें वह खोता आप ही;
सर्व पापोंकी यह जननी एक बस है झूँठ ही।
और उत्तम सत्य जहाँ यह भाव हो नहीं ठेठ ही॥

उत्तम शौच—

आत्म तो स्वभाव शुचि है पर विभावोंमें फंसा,
स्वभाव अपना तो होवे शुद्ध शुचि निर्मल दशा;
और काया मल धातुमय अशुचि स्वभावसे।
होय शुचि कैसे सुगन्धित द्रव्य जलधि स्नानसे॥
जितने जगतमें शुचि पदारथ कायके संयोगसे,
अशुचि हो जाते सभी हो भोग और उपभोगसे;
होय सच्ची शुचि सभी हो त्याग लोभ कषायका।
लोभ आशाका है सहचर और जनक है पापका॥
यों लोभको जो त्यागकर सन्तोषको धारण करें,
आशा नहीं जिनके तनिक वह शौच
गुण धारण करें;
जहां न आशा, लोभ, अशुचि भाव ही स्वभावसे।
वहां उत्तम शौच होता रत्नत्रय प्रभावसे॥

उत्तम संयम

सैन्य पर नहीं हो नियंत्रण, राज्य जावे भूपका।
बिना मन इन्द्रिय नियंत्रण, अशुभ होवे जीवका॥
ज्यों कोई विषफल मनोहर, खावो जीवन हरे।
त्यों विषयसुख भी हलाहल, घात आत्मगुण करें॥
स्पर्शनसे हस्ती बंधता, मीन रसना सुख मरे।
घ्राण भौंरा, शलभ चक्षु, श्रोतसुखसे मृग मरे॥
एक इन्द्री विषय सेवे, जीवकी हो यह दशा।
तो कहां उसका ठिकाना, विषय पंचेन्द्री फंसा॥
षट्कायकी हिंसा न हो, स्वच्छंद मन इंद्रिय नहीं।
नहीं सुखाभास आशा, इन बिना संयम नहीं॥
यह भाव और पुरुषार्थमय, जब भाव हो स्वभाव ही
होय संयम रत्न उत्तम, वहां सहज स्वभाव ही॥

उत्तम तप

स्वपर हितकारक तथा, इच्छा निरोधक भाव हो।
स्वेच्छासे कष्ट सहना, तप इसीका नाम हो॥
पर बिना विवेकके है, सत्य तप यह भी नहीं।
कमठ कुम्भार तपा हुआ, जो तप है उत्तम वह नहीं॥
छह छह अंतर बाह्य यों, द्वादश विधि तपकी कही।
कर्म ईंधन भस्म हेतु, अग्नि केवल है वही॥
कषाय घृतकी स्निग्धता, धुल जाय तप तेजाबमें।
अभिलाषासे हो रहित और, जो स्वस्थ हो निज नाममें॥

उत्तम त्याग

नानाविधि संचय किया धन, व्यय करो परिवारमें।
और उसका अंश कुछ, सत्पात्रके भी दानमें॥

मक्खियां गिरी रबरकी वृत्ति, सीख लो संसारमें।
सर्प दानान्तराय चिपटे, दे न सकता दानमें॥
फिर भी है निज गंध देता, पात्र जो है पासमें।
जो कि परहित गंध देते, वह छिपा संसारमें॥

आहार, औषध अभय, विद्या, इन सुदान सुगंधको।
निजशक्तिके अनुसार देवो, दान तुम सत्पात्रको॥
जो कि उससे लाभ लेवे, करके परउपकारको।
इस भांति देवो दान भले, यों घटाकर रागको॥
न्याय नीतिसे किया धन, अधिक हो या अल्प हो।
दो शक्तिसे सत्पात्रको, सुदान उत्तम त्याग हो॥

उत्तम आकिञ्चन्य

अति [illegible] कहीं हो, क्यों न [illegible] भी हो।
[illegible] तृष्णा करे अब, नाहि अपना तन भी हो॥
ज्ञान सुख और वीर्य आदि, इसके हैं निज गुण कहे।
पर [illegible], यह आकिंचन्य [illegible] है॥

है [illegible] मानना निज, मूर्छित हो [illegible]।
[illegible] जो ममत्व बुद्धि, परिग्रह [illegible]॥
होती [illegible] है वृद्धि, इस परिग्रह वृद्धिसे।
[illegible] पर्याय पाय, [illegible] तृष्णाकी [illegible]॥
परिग्रह जो है घटता [illegible],
वो ही [illegible] आत्म आकिंचन्यके;
नहीं अन्तर बाह्य जिनके [illegible] भी परिग्रह रहा।
वहाँ आकिंचन्य उत्तम [illegible] मुनिके है कहा॥

उत्तम ब्रह्मचर्य

[illegible] है आत्मा [illegible] ब्रह्म [illegible],
[illegible] पर्यायमें [illegible];
[illegible] भी नहीं, टिके जिनके [illegible]।
पर स्वयं नहीं टिक सके, वे [illegible] बालसे॥
यह भी है एक मूर्छा, [illegible] भी हो।
[illegible] है आत्मा, रोगी या निर्बल ही हो॥
यों ही वे निज [illegible] है, ह्रास करते स्वयं ही।
और [illegible] एक ही गुण, है [illegible] ही॥
[illegible] को, [illegible] ही [illegible];
[illegible] है आत्मा, [illegible] होते ब्रह्मको॥
और जो करते हैं [illegible], आत्माके स्वरूपमें।
लीन होते हैं वही बस, एक उत्तम ब्रह्म[illegible]॥

—[illegible]

'यह कहता सचमुच पर्यूषण'

करो आत्माका संशोधन,
हनो कषायोंको अपने मन।
धरो धर्मके तुम दशलक्षण,
जिससे सुधरे तेरा जीवन॥
यह कहता सचमुच पर्यूषण।१॥

करे चरित्र आत्म संशोधन,
कषाय दमन करता है अनशन।
शुद्ध हृदयमें हो दशलक्षण,
करले अपना शुद्ध शांत मन॥
यह कहता सचमुच पर्यूषण।२॥

एक वर्षमें आया यह क्षण,
आत्म-शुद्धि तुम करो विचक्षण।
इसमें भूल न होवे सज्जन,
यही निवेदन इसका जनजन॥
यह कहता सचमुच पर्यूषण॥३॥

भूलोंका तू कर निष्कासन,
लगा ध्यानकी तू पद्मासन।
सिद्ध स्वरूप विचारो निजमन,
दूर हटे जिससे सब दूषण॥
यह कहता सचमुच पर्यूषण॥४॥
हम उनके सचमुच पर्यूषण,
बनते निर्मल जो निर्दूषण।
ढोंगीके हम नहिं पर्यूषण,
सत्य शांति ही है मम भूषण॥
यह कहता सचमुच पर्यूषण॥५॥
नहिं धारा यदि संयम भूषण,
अनाचारका होगा दूषण।
यह कर देगा तेरा ऊषण,
नहीं साथ देगा पर्यूषण॥
यह कहता सचमुच पर्यूषण॥६॥

२८० रात्रि भोजन का फल—

स्फुटितांह्रिकरा दीना
ये काष्ठतृण वाहका:।
कुचेला दु:कुला सन्ति
ते रात्र्याहार सेवनात् ॥८७

— o —

रात्रिभोजन त्याग का फल—

सुस्वरा निर्मलांगाश्च
दिव्य वस्त्र विधायका:।
[धन्या: सौभाग्यवन्तोऽत्र
ते रात्र्याहार वर्जनात् ॥८८]

(पूज्यपाद श्रावकाचार)

एकीभावस्तोत्रं

(१) एकीभावं गत इव मया
जो अति एकीभाव
(२) ज्योतीरूपं दुरित निवह-
तुम जित ज्योतिस्वरूप
(३) आनन्दाश्रुस्त्रापितवदनं
आनंद आंसू वदन धोय
(४) प्रागेवेह त्रिदिवभवना-
दिवितें आवनहार भये
(५) लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्
प्रभु सब जगके विन हेतु
(६) जन्माटव्यां कथमपि मया
भव-वनमें चिरकाल भ्रम्यो
(७) पादन्यासादपि च पुनतो
श्रीविहार परिभाव होत
(८) पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं
भव तज सुखपद वसे
(९) पाषाणात्मा तदितरसमो
मानथंभ पाषाण आन
(१०) हृद्यः प्राप्तो मरुदपि भवन्
प्रभु-तन-पर्वत परसे

(११) जानासि त्वं मम भव-भवे
जनम जनमके दुःख सहे सब ते
(१२) प्राप्यैवं तव नुति पदै-
मरण-समय तुव नाम-मंत्र
(१३) शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते
जो नर निर्मल ज्ञान मान शुचि
(१४) प्रच्छन्नः खल्वयमघमयै-
शिव-पुर केरो पंथ पाप-तमसों
(१५) आत्मज्योतिर्निधिरनवधि-
कर्म-पटल-भू-मांहि दबी
(१६) प्रत्युत्पन्ना नयहिमगिरेरायता
स्याद्वाद-गिरि उपजि मोक्ष-सागर
(१७) प्रादुर्भूतस्थिरपदसुख त्वामनु-
तुम शिव सुखमय प्रगट करत
(१८) मिथ्यावादं मलमपनुदन्
वचन-जलधि तुव देव, सफल
(१९) आहार्येभ्यः स्पृहयति परं
जो कुदेव छवि-हीन वसन
(२०) इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां
सुरपति सेवा करें कहा प्रभु

२१ वृत्तिर्वाचामपरसदृशी न त्वमन्येन
वचनजाल जड़रूप आप
२२ कोपावेशो न तव न तव क्वापि
कोप कभी नहिं करो प्रीति
२३ देव स्तोतुं त्रिदिवगणिकामंडली
सुरत्रिय गावें सुयश सवगीति
२४ चित्ते कुर्वन्निरवधिसुखज्ञान
अतुल चतुष्टय रूप तुम्हें जो
२५ भक्तिप्रह्वमहेन्द्रपूजितपद
अहो जगत्-पति, पूज्य, अबाध-
२६ वादिराजमनु शाब्दिकलोको
वादिराजमुनितें अनु

— ० —

२ष्ठ

संख्यावाचक पद —

0 ख, शून्य,

१ चन्द्र, सोम, क्षोणी, धरणी, अब्ज, दिवाकर, नाग

२ नेत्र, कर, पक्ष, यम, युग,

३ नेत्र, वह्नि, गुण, अतिथि

४ श्रुति, ~~बाण, शिलीमुख~~ वेद, युग, पयोधि, निगम

५ बाण, शिलीमुख (कामिनीमुख)

६ ऋतु रस, तर्क, अंग, अरि, षडानन,

७ मुनि, जलधि, शैल, अश्व, राग,

८ वसु, गज, मद, आम्नाय, अचल,

९ अंक, लेलिहान, रन्ध्र, निधि, नाग,

१० दिशा,

११ रुद्र,

१२ अर्क, रवि,

१३ पक्ष,

१४ जगत, रत्न, मनु,

१५ तिथि, पक्ष,

१६ भूप, कला, पूर्णिमा,

१७

१८

१९ [illegible]

२० नख

संख्या-सूचक संकेत

रस वसु चंद्र सोम मुनि नेत्र ख
६ ८ १ १ ७ 3/२ ०

शिलीमुख बाण वह्नि क्षोणी जलधि धरणि
५ ५ 3 १ ७ १

अंक तर्क अङ्ग शैल लोलिहान गज
९ ६ ६ ७ ४ ८

रुद्र अरि मद आम्नाय वेद उरग जगत
११ ६ ८ ८ ४ ७ १४

तिथि अर्क युग भूप पक्ष कला
१५ १२ ४ १६ २ १६

पयोधि सिद्ध राग [illegible] अब्ज दल त्रिक
४ ८ ७ ५ १ २ ४

गुण निधि रत्न अचल मनु रवि
3 ९ १४ ८ १४ १२

त्रैलोचन (महादेव के मुख) षडाननवदन (का. र्तिकेय के मुख)
५ ६

नख अब्धि श्रुति यम पक्ष तिथि
२० ४ ४ २ २ १५

कृग दिशा पितामह नायक तनु
६ १० १ १ १

कागज पर लिखे हुए शब्द व अक्षरों के
उड़ाने की तरकीब.

नौसादर, सोडा और सुहागा की बुकनी.
एक लोटा पानी में घोलकर मलें।

रायचन्द मगनलाल जी दोशी.
ईडर (महीकांठा) गुजरात.

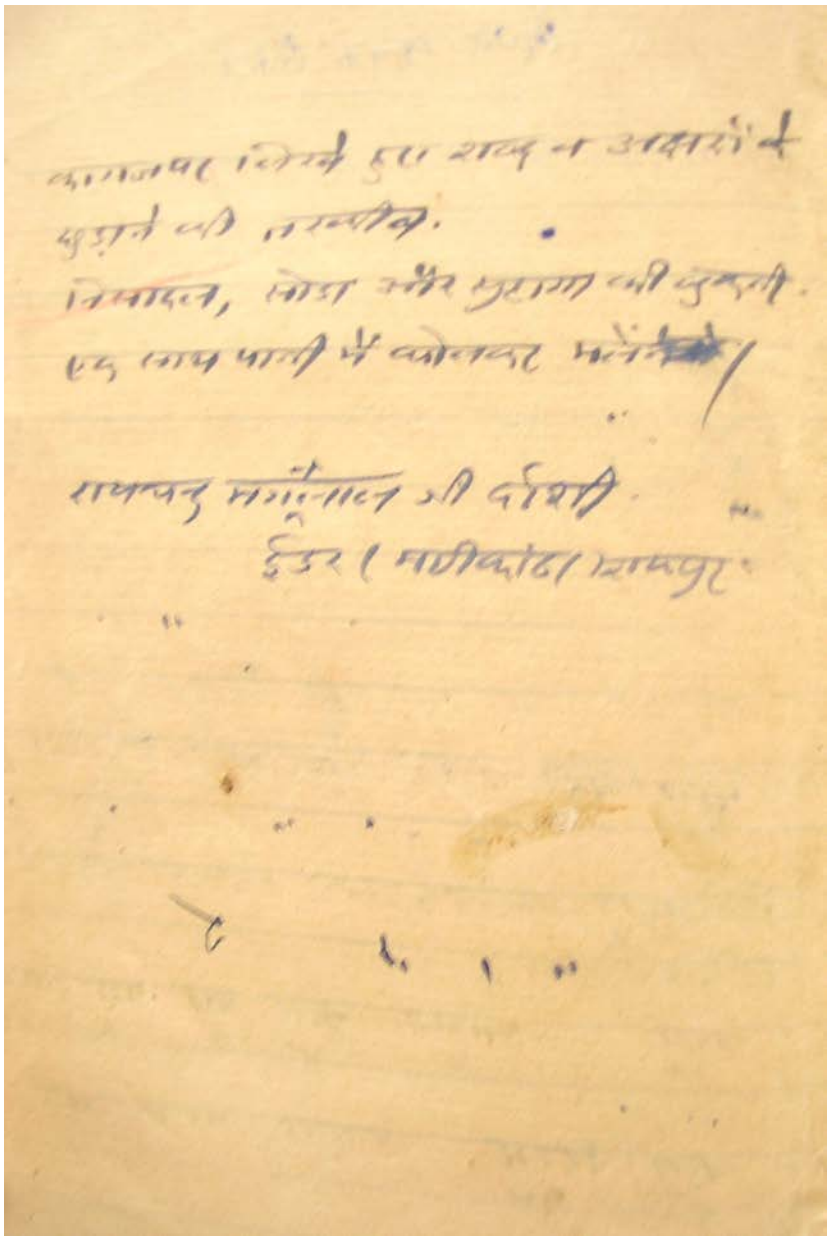

उदात्त त्याग के उदाहरण

१

धनकुमार को किसान का खेत जोतने पर मोहरों से भरा घड़ा मिला. वह किसान को देता है. पर किसान नहीं लेता — कहता है मैं तो सात पीढ़ी से जोतता आया हूं. कभी धन नहीं मिला. यह आपके पुण्य से ही प्रकट हुआ है। पर धनकुमार कहते हैं कि भाई — खेत तो तुम्हारा है. अत: उसमें मिले धन पर तुम्हारा ही अधिकार है. मेरा कैसे हो सकता है।

—०—

२

गुजरात के महामंत्री उदयन जब अत्यन्त गरीबी से पीड़ित होकर मारवाड़ छोड़कर घर-बार के साथ गुजरात पहुंचे - तो उन्हें मन्दिर में दिवाल बैठा देखकर लाछीबाई श्राविका ने उनका परिचय पूछा और अपने एक दूसरे घर में आश्रय दे दिया. आजीविका की भी व्यवस्था कर दी - जब कुछ धन उनके पास हो गया - तो उन्होंने उस कच्चे मकान को पक्का बनवाने के लिए नींव खुदाई। जिसमें सोने से भरा घड़ा मिला. उन्होंने लाछीबाई को देना चाहा - पर उसने यह कह कर लेने से इनकार कर दिया कि यह मकान जब मैं तुमको दे चुकी - तो इस पर तुम्हारा ही अधिकार है। मेरा नहीं।

—०—

२

हीरे की खोज

(हीरा कहीं नहीं; वह घर में ही है।)

कोई भिक्षुक किसी श्रीमन्त के घर पहुंचा। जिसने उसे भूखा देखकर बड़ी आत्मीयता से खूब खाना भोजन कराया। भिखारी ने प्रसन्न होकर अपनी झोली में पड़ा हुआ हीरा उसे दे दिया। सेठ हीरा पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला — महाराज, यह कहां मिलता है? भिखारी ने कहा — हीरे की खदान में। भिखारी चला गया और सेठ हीरे की खदान की खोज में निकला। सेठ को जब वह कहीं पास में न मिली तो वह अपना घरबार, खेती बाड़ी आदि सब बेचकर जंगलों में हीरे का खदान खोजने के लिए चक्कर लगाने लगा। जब कहीं भी उसका पता न चला तो वह पागल हो गया। और अन्त में एक दिन मर गया।

कुछ दिनों बाद वही भिक्षुक घूमता हुआ उस सेठ के घर पहुंचा — देखा तो वहां वह सेठ नहीं मिला। पूछने पर ज्ञात हुआ कि उसका हाल, तब भिक्षुक ने मकान के भीतर इधर-उधर नजर डाली — तो एक कोने में कुछ और हीरे नजर आये। उसने घरवालों से पूछा कि हीरे कहां मिले — उन्होंने बताया कि किसान लेहरी के खेत में से लिया था। उसके नहीं किसके घर मिले हैं। भिक्षुक चला गया और कहा —

किनारे की रेती दूर हटाने लगा - किनारे
उसे चमकते हुए कुछ हीरे मिले। वह
सोचने लगा - कि देखो उसके सिरहाने ही
हीरे की खदान थी - मगर वह उसे ढूंढने
के लिए जंगलों की खाक छानता - छानता
पागल होकर मर गया है।

यह एक दृष्टान्त है - मनुष्य इसी प्रकार
ज्ञान-हीरा की खोज में इधर-उधर भटका मारा
फिरा करता है, पर अपने घर के भीतर के
हीरों के भंडार को नहीं देखता -

पास ही रे हीरे की खान
खोजता कहाँ उसे नादान?

पं० देवीदासजी का यह पद स्मरणीय है -
'नैन जागत पायो निरख आतम हीरा'
(भजन नं० ८१)

४ (श्री[illegible])

हृदय शुद्धि बिना
तीर्थस्नान बेकार है

कुरुक्षेत्र का युद्ध जीतने के बाद युधिष्ठिर अपने नरसंहार जनित पापों को धोने के लिए तीर्थयात्रा को निकले। चलते वक्त उन्होंने श्रीकृष्ण से भी साथ चलने को कहा। वे बोले - मैं तो नहीं चल सकता - पर मेरा यह तुम्बा साथ ले जाओ और तीर्थस्नान के समय इसे भी डुबकी दिलाते जाना। समस्त तीर्थों की यात्रा करके जब युधिष्ठिर लौटे तो उन्होंने बड़ा दरबार लगवाया और खुशियां मनाईं। श्रीकृष्ण भी आये। उन्होंने अपने तुम्बे को तीर्थस्नान कराने की बात पूछी - उत्तर मिला - महाराज, मैंने तो हर तीर्थ में एक-एक ही डुबकी लगाई है, पर इसे मैंने २-२ डुबकियां लगवाई हैं। सुनकर श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् उन्होंने एक नौकर को उसे पीसकर चूर्ण करलाने को कहा। जब तुम्बे का चूर्ण बनकर आ गया तो उन्होंने अपने हाथ से प्रत्येक दरबारी को १-१ चुटकी प्रसाद के रूप में बांट दिया। लोगों ने फांकी लगाई - तो वह बहुत कड़वा होने से न तो उसे निगल सके और श्रीकृष्ण जी के सन्मुख खड़े होने से उसे उगल ही सके। श्रीकृष्ण ने लोगों के चेहरों को उदास देखा तो उसका कारण पूछा, जब लोगों ने उसके कड़वे होने की बात कही तो उन्होंने कहा - जब तक भीतर की कषाय दूर नहीं होती तब तक तीर्थस्नान बेकार है।